શ્રી યશોવિજયજી
જૈન ગ્રંથમાળા
દાદાસાહેબ, ભાવનગર.
ફોન : ૦૨૭૮-૨૪૨૫૩૨૨
૩૦૦૪૮૪૬
૨૩૩૧

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat
www.umaragyanbhandar.com

नं.
2304

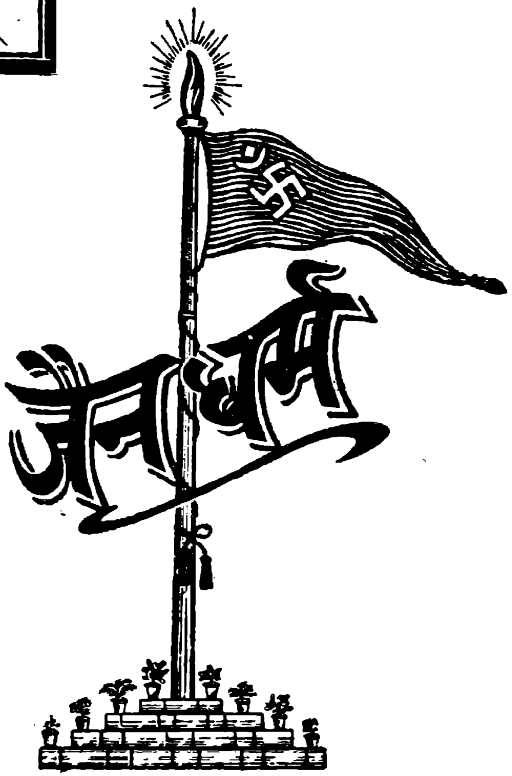

नाथूराम डोंगरीय जैन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

२२२६६. भाग १ (५)

जैन-धर्म

लेखकः—

नाथूराम डोंगरीय जैन,

"अवनीन्द्र" न्यायतीर्थ, पूर्व सम्पादक 'प्रकाश'

कचौरा (आगरा) निवासी श्रीमान् ला० शिखर चन्द्र मुरलीधर जी रईस की ओर से १५०० प्रतियां "जैनमित्र" के ग्राहकों व अन्य महानुभावों को सप्रेम भेंट।

प्रथमावृत्ति २००० | वीर संवत् २४६७ | उपहार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रकाशकः—
नाथूराम डोंगरीय जैन,
जैन शिक्षा-मंदिर, बिजनौर।

सर्वाधिकार लेखक के आधीन

मुद्रकः—
शिवशङ्कर शर्मा,
टाइम्स प्रेस, बिजनौर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दो शब्द !

जैन धर्म क्या है, संसार का व हमारा इसके द्वारा क्या क्या हित हो सकता है तथा इसके सत्यतापूर्ण बहुमूल्य विचार कहां तक मानने व अमल करने योग्य हैं और उन पर अमल करने से हमारे दुःखों एवं वर्तमान भीषण अशान्ति का नाश होकर विश्व-शान्ति का विशाल साम्राज्य कैसे स्थापित हो सकता है ? इन बातों से जनता का अधिकांश भाग आज बिलकुल अनभिज्ञ जान पड़ता है।

प्रस्तुत पुस्तक इन्हीं बातों को लक्ष्य कर लिखी गई है, ताकि संसार के प्रत्येक व्यक्ति का हित हो, और वह अपना व दूसरों का जीवन शान्ति पूर्वक व्यतीत कर आत्मा को उन्नति की ओर ले जाता हुआ परमात्म पद प्राप्त कर पूर्ण सुखी बन सके। जैन धर्म क्या है ? इस प्रश्न का खुलासा उत्तर यद्यपि जैन साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों में विस्तार के साथ दिया गया है, किन्तु उनके संस्कृत व प्राकृत भाषा में होने के कारण अव्वल तो वे जन साधारण के लिये सुगम्य नहीं हैं। दूसरे जिन ग्रन्थों का हिन्दी आदि भाषाओं में अनुवाद भी होगया है या जो हिन्दी में स्वतंत्र रूप से लिखे गये हैं, उनके विस्तार और गहनता के कारण वे संक्षिप्त-रुचि रखने वाले पाठकों द्वारा पढ़े नहीं जाते। इसके सिवाय जैनधर्म के प्रचार और प्रचारकों के प्रायः अभाव होजाने से इसके सम्बन्ध में लोगों में बहुत कुछ भ्रमपूर्ण धारणाएँ भी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दृढ़ हो गई हैं। अतः हमारी समाज में एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता भी अनुभव की जा रही थी जो आसानी से जैनधर्म के सिद्धान्तों की महत्ता और वास्तविकता जनता को बता सके। फलतः जैनधर्म के सर्वोपयोगी मोटे २ सिद्धान्तों का सार लेकर राष्ट्रभाषा द्वारा नवीन ढंग से प्रस्तुत करने का यह प्रयास किया गया है। अल्पज्ञता व प्रकाशन की शीघ्रता में जो त्रुटियां रह गई हों, उनके लिये क्षमा चाहते हुये हम अपने प्रेमी पाठकों से सानुरोध निवेदन करते हैं कि वे कृपा कर निष्पक्ष भाव से इस पुस्तक को पढ़ने का कष्ट उठावें। इससे यदि उन्हें तनिक भी लाभ पहुंचा तो लेखक अपने परिश्रम को सफल समझेगा।

"जैनधर्म की प्राचीनता" शीर्षक के अन्तर्गत विरोध परिहार, जैनधर्मप्रकाश, अनेकांत, माधुरी आदि पुस्तकों व पत्रिकाओं से जो उद्धरण दिये गये हैं उनके लेखकों का मैं हृदय से आभार मानता हुआ प्रस्तावना लेखक श्रीमान् माननीय भा० राजेन्द्रकुमार जी, कहर के ब्लाक बनवाने में यथेष्ट सहायक श्रीमान् भाई शांतिचन्द्र जी, एवं वितरणकर्ता बन्धु को अनेकशः धन्यवाद देता हूँ। साथ ही विद्वानों से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस पुस्तक पर अपनी शुभ सम्मति शीघ्र ही प्रदान करने की कृपा करें, ताकि अगले संस्करण में उसका सदुपयोग हो सके।

बिजनौर
१ दिसम्बर, ४०

— नाथूराम डोंगरीय जैन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन-धर्म

आप श्रीमान बा० राजेन्द्र कुमार जी जगत्प्रकाश जी जैन
रईस, बिजनौर की पूज्य धर्मनिष्ठ माता हैं। आपने
अभी हाल ही में इस पुस्तक के प्रचारार्थ
१००) की स्वीकारता प्रदान की है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आप श्रीमान बा० राजेन्द्र कुमार जी जगत्प्रकाश जी जैन
रईस, बिजनौर की पूज्य धर्मनिष्ठ माता हैं। आपने
अभी हाल ही में इस पुस्तक के प्रचारार्थ
१००) की स्वीकारता प्रदान की है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन-धर्म

स्वर्गीय ला० शिखर चन्द्र जी, कचौरा

जन्म सं० १९२८ स्वर्गवास सं० १९९६

आपने मृत्यु समय १०००) का दान किया था, उसमें से आपके सुयोग्य पुत्र श्रीमान ला० मुरलीधर जी, दरबारीलाल जी ने २००) में इस पुस्तक की १५०० कापियां धर्म-प्रचारार्थ बिना मूल्य वितरण की हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्वर्गीय श्री० लाला शिखरचन्द्र जी !

(इस पुस्तक के प्रकाशन का अधिकांश श्रेय श्रीमान् लाला शिखरचन्दजी को है। उनके जीवन का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है)

आपका जन्म भदावर प्रांत के अन्तर्गत कचौरा ग्राम में सं० १९२८ माघ कृष्णा ११ को हुआ था (यह ग्राम आगरा, इटावा सड़क पर यमुना किनारे बसा हुआ है। किसी समय यह एक सम्पन्न स्थान था) आप जैनियों की लमेचू जाति के एक रत्न थे। आपके पिता स्वर्गीय लाला प्यारेलाल जी एक धर्मनिष्ठ, प्रतिष्ठित एवं कर्त्तव्यपरायण कार्यकुशल व्यापारी थे। तत्कालीन महाराजाधिराज श्री महेन्द्रसिंहजूदेव सी० आई० ई० भदावर नरेश आपका बहुत मान करते थे। आप अपने पीछे आठ वर्षीय अपनी इकलौती संतान ला० शिखरचन्द्रजी (चरित्र नायक) को छोड़कर युवावस्था में ही स्वर्गवासी हो गए थे, अतएव ला० शिखरचन्द्रजी की शिक्षा दीक्षा किसी विद्यालय में न होकर घर पर ही आपकी कार्यकुशल और विदुषी माता की देखरेख में हुई। आप प्रारम्भ से ही पिता के अनुरूप सदाचारी और धर्मनिष्ठ थे। आपको धार्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय का बड़ा प्रेम था। ज्यों २ आपकी अवस्था बढ़ती गई, आप अपने पिता जी के व्यापार को शनैः २ संभालने लगे। उस समय सब यही कहते थे कि यह एक होनहार बालक है। १२ वर्ष की अवस्था

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में आपने अपने व्यापार (कपड़े की दूकान) को पूर्णरूप से अपने हाथ में ले लिया था। उसी समय (समाज की प्रथानुसार) आपका विवाह हो गया। आपका दाम्पत्य जीवन अन्त तक बड़ा प्रेम और आनन्दमय रहा। जहां अनेक युवक अपने यौवन के उन्माद में पथभ्रष्ट हो जाते हैं वहां हमारे चरित्रनायक और भी अधिक दृढ़ता के साथ कर्त्तव्य मार्ग पर अग्रसर हुए। सौभाग्य से आपकी धर्मपत्नी सर्वदा आपको धार्मिक और व्यापारिक कार्य में उत्साहित करती रहीं, और आपका व्यापार दिन प्रतिदिन उन्नति करने लगा। परन्तु आप व्यापार ही में अन्य लोगों की भांति लिप्त नहीं हो गये और अपने जीवन के सच्चे साथी धर्म की ओर हमेशा श्रद्धा भक्ति और प्रेम प्रदर्शित करते रहे। आप गृहस्थी में सैकड़ों झंझटों के लगे रहने पर भी स्वाध्याय पूजा आदि नित्य कर्म के लिए यथेष्ट अवकाश निकाल ही लिया करते थे। आपने अपनी ११ वर्ष की अवस्था में ही श्री गिरनारजी की यात्रा (माता जी के साथ में) और सं० १९५६ में सकुटुम्ब श्री सम्मेदशिखर जी की वन्दना भक्ति पूर्वक करके अपनी धार्मिक रुचि का प्रारंभ में ही परिचय देदिया था, तथा आपने श्री सोनागिरजी, सौरीपुर और महावीरजी की भी कई बार वंदना की थी। आप एक संयमी और सदाचारी पुरुष थे और अपने धन का सदुपयोग यदा कदा जैन संस्थाओं में दान व परोपकार के कार्य कर किया करते थे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आपके चार पुत्र और दो कन्याएँ इस भांति ६ सन्तानें हुई। यद्यपि आपकी संतान की शिक्षा सामान्यरूप में ही हुई थी, परन्तु आपके चरित्र और शिक्षाओं का प्रभाव उस पर ऐसा पड़ा कि ज्येष्ठ पुत्र लाला मुरलीधर जी की गणना अपने अध्यवसाय से आज विद्वानों में है। आपके कनिष्ठ पुत्र लाला बनवारीलाल व दरबारीलाल जी भी एक कुशल व्यापारी हैं। आपकी संतान में लाला बाबूरामजी एक बड़े होनहार युवक थे; परन्तु दुर्भाग्यवश आप असमय में ही अपने पीछे एक पुत्री व एक पुत्र चि० धर्मप्रकाश को छोड़ संसार से चल बसे।

ला० शिखरचन्द्र जी की मधुर वाणी बड़ी ओजपूर्ण थी। आप जिससे एक बार बात कर लेते थे वह आपका होकर सर्वदा आपसे मिलने की इच्छा रखता रहा। आपकी वाणी में जादू का सा असर था। मुझे भली भांति ज्ञात है जब आप जैनधर्म की व्याख्या करते थे तो एक समा बँध जाता था। मैं प्रारम्भ से ही आर्यसमाजी हूँ, और मुझे प्रायः धार्मिक विषयों पर आपसे बात करने का अवकाश मिला करता था। मैंने आपसे जब २ ईश्वर कर्तृत्व पर बात की तो आप इस सुन्दरता के साथ "ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं है", साबित कर देते थे कि मैं अवाक् रह जाया करता था, और मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि ईश्वर जगतकर्ता नहीं है।

आप एक दीर्घ काय सुदृढ़ महानुभाव थे, जहां आप में प्रेम, अध्यवसाय, व्यापार कुशलता आदि गुण थे वहां आप एक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वीर पुरुष भी थे। एक बार जब आप चित्राहाट से रात्रि के समय लौट रहे थे उस समय आपके साथ आपके भतीजे लाला अयोध्या-प्रसाद जी व लाला ख्यालीराम जी ही थे। आप पर अकस्मात् १५-२० लुटेरों ने मार्ग में आक्रमण किया। आपने उस समय डटकर बदमाशों का सामना किया और अपनी व अपने माल की रक्षा की। इसके अतिरिक्त आप सर्वदा निःसहाय और दुखियों की सहायता करते रहते थे।

आप अन्त समय तक पूर्ण स्वस्थ रहे और मृत्यु के पहिले तक पूजादि सब नित्यकर्म नियमपूर्वक करते रहे। इतना ही नहीं, आप दूकान के काम में भी पूर्ण सहयोग देते रहे। आप केवल ६ दिन साधारण रोगग्रस्त रहकर और अन्त समय १०००) दान देकर कार्तिक सु० ७ सं० १९९६ को समाधिमरणपूर्वक इस असार संसार को छोड़कर स्वर्गवासी हुए।

आपके निधन से केवल कचौरा ग्रामवासियों को ही धक्का नहीं लगा; किन्तु यहां के आस पास के बीसियों ग्रामों को एक जबर्दस्त ठेस पहुंची। मनुष्य कर्तव्यशील होकर किस प्रकार लौकिक और पारलौकिक उन्नति कर सकता है? यह शिक्षा आपके जीवन से भलीभांति मिल जाती है।

—(कुंवर) महावीरसिंह, सेनेटरी इन्सपेक्टर।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
मंगलाचरण	१०
प्रस्तावना	११
प्राक्कथन (संसार किधर?)	१३
दुनियां क्या चाहती है ?	१५
जैनधर्म संदेश	१७
विश्व प्रेम	१६
स्याद्वाद	२४
जैनधर्म क्या है ?	३१
सुख का प्रशस्त मार्ग (सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र)	३३
सच्चा देव	३८
सच्चा गुरु	३६
सच्चा शास्त्र	३६
सच्चा धर्म	४०
तत्व क्या है ?	४१
सम्यग्दर्शन की विशेषताएँ	४३
हिंसा और अहिंसा	५०
हिंसा के भेद	५२
गृहस्थ और साधु की अहिंसा में अन्तर	५३
गृहस्थ और विरोधी हिंसा	५७
अहिंसा की रक्षा और उसका ठीक २ निर्वाह	६४
अध्याय दूसरा	
जैनदर्शन तथा अन्य-दर्शनों के दृष्टिकोण-में मौलिक अन्तर	७८
जैनधर्म सिद्धान्त	८३
जैनधर्म और ईश्वरवाद	६१
जैनधर्म की प्राचीनता	६६

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

❀ मंगलाचरणम् ❀

कर्म दहन कर शुक्ल ध्यान से,
पाया अनुपम सौख्य महान ।
दर्शन वीर्य अनन्त प्रकट कर,
प्राप्त किया विज्ञान महान् ॥
दिव्य ध्वनि से भविक जनों—
को करवाया धर्मामृत पान ।
ऐसे वन्दूँ वीर, जिन्होंने—
दिखलाया शिव पथ अम्लान ॥

—वीर प्रतिभा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

?

बीसवीं सदी का यह युग कई बातों में अपनी विशेषता रखता है। एक ओर तो मनुष्य के ज्ञान और विज्ञान की परिधि बढ़कर उसे जीवन को निष्पक्ष भाव से पहिचानने की प्रेरणा कर रही है और दूसरी ओर विज्ञान की अजेयशक्ति, भौतिक वाद का सहारा पाकर मनुष्य को मनुष्य के प्रति विद्रोही बना रही है। कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य की सभ्यता और संस्कृति विकास की ओर उन्मुख है, और कभी ऐसा मालूम होता है कि मानव, सभ्यता और संस्कृति के प्रशस्त राजमार्ग को छोड़कर स्वार्थ की संकुचित पग-डंडियों पर पड़कर, पतन की ओर अग्रसर हो रहा है। कोई कहता है कि मनुष्य का भविष्य उज्ज्वल है, और कोई कहता है कि उसके जीवन का अन्धकार प्रति दिन गहरा होता जाता है।

असल बात यह है कि संसार आज मानवीय और दानवीय सभ्यता के सङ्गम पर खड़ा हुआ है। उसकी जिस भावना को अधिक प्रेरणा मिलेगी, संसार का आगामी रूप उसी के अनुकूल होगा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस युग में भारतवर्ष का उत्तरदायित्व सब देशों की अपेक्षा अधिक हैं ; और भारतवर्ष में भी उस धर्म का उत्तर-दायित्व अन्य सब धर्मों से अधिक है, जिस की बुन्याद विश्व-प्रेम, विश्वसंवेदना और विश्वहित के अटल सिद्धांतों पर खड़ी है। निश्चय ही जैनधर्म सदा से इन सिद्धांतों का हामी रहा है और जो अन्य धर्म, या व्यक्ति अथवा वर्ग इन सिद्धांतों को अपनाते हैं, उनके साथ सदा सहयोग के लिए तत्पर है।

विश्वप्रेम, स्याद्वाद और विश्वहित के जिन सिद्धांतों को तथा जीवन की जिस चर्य्या को जैनधर्म ने अपने मूल में लेकर अपने आपको विश्वधर्म बनाया है, उनका प्रचार करना हम सब का कर्त्तव्य है। हमारी समाज के उदीयमान विद्वान श्री पंडित नाथूराम डोंगरीय जैन, 'अवनीन्द्र', न्यायतीर्थ ने इसी लक्ष्य को लेकर यह पुस्तक लिखी है। इस दिशा में जो भी कार्य्य किया जाये वह सदा ही सराहनीय है। मुझे आशा है कि पंडित जी की इस उपयोगी रचना का समुचित आदर होगा, और वह समय २ पर इस प्रकार की रचनाएँ जनता के सामने लाते रहेंगे जिससे सच्चे सुख और सच्ची शान्ति की खोज का मार्ग आसान बन जाये।

लाहौर,
३ सितम्बर १९४०

—राजेन्द्र कुमार जैन।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्राक्कथन

संसार किधर ?

आज मानव जीवन की प्रत्येक दिशा में भीषण अशांति का नग्न तांडव हो रहा है। चारों ओर पाप, पाखण्ड, अन्याय और अत्याचारों का ही शैतानी साम्राज्य छाया हुआ है। बलवान निर्बलों को, धनवान निर्धनों को, उच्च जाति नीच जातियों को, राजा-प्रजा को और भाई भाई को भी सता कर, धोखा देकर यहां तक कि उसका सर्वस्व हरण कर भी अपनी आसुरी लालसा को तृप्त करने में स्वार्थान्ध होकर जुटा हुआ है। न केवल सामाजिक अपितु राजनैतिक क्षेत्र में भी युद्ध जैसे निर्दयता पूर्ण कार्यों द्वारा नर-संहार का भयानक दृश्य उपस्थित होता रहता है, तथा साम्राज्य लोलुपी वर्ग दुनियां के छोटे और अस्त्र शस्त्र हीन देशों के लोगों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर उनके धन, जन सर्वस्व को हड़पने पर तुले रहते हैं, जिनमें मनुष्य अपनी मानवता को कुचल कर एक खूंखवार जङ्गली पशु से भी भयङ्कर रूप में दिखाई देता, और मार काट, लूट-खसोट का बाजार गर्म कर विश्व शांति का गला घोंटता रहता है।

आत्मा क्या है, धर्म किसे कहते हैं, तत्व किस चिड़िया का नाम है, आत्म कल्याण कैसे हो सकता है, सच्चा सुख और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शान्ति किस भांति मिल सकती है, व हमारा क्या कर्त्तव्य है ? आदि बातों पर कोई विचार तक नहीं करना चाहता। प्रत्युत् दूसरों को उल्लू बना कर अपना स्वार्थ कैसे साधा जाय, संसार की सारी सम्पत्ति पर किस भांति मैं ही अधिकार करके बैठ जाऊं, और मन व इन्द्रियों को तृप्त करने के लिए सम्पूर्ण उत्तमोत्तम भोगोपभोग सम्बन्धी वस्तुओं की कैसे पूर्ति कर डालूं ? आदि आदि अशांति, आकुलता, वासना और हाय २ मय विचारों में ही सम्पूर्ण मानव समाज निमग्न हो रहा है। धर्म और आत्म-ज्ञान से शून्य युवतियां व युवक मद और मदन मस्त बन कर खाने पीने मौज उड़ाने को ही अपना अन्तिम लक्ष्य बना विलासिता मय जीवन व्यतीत करने में ही अपने को कृत "कृत्य समझ रहे हैं, तथा धर्म कर्म के नाम को सुनते ही बिदकते, नाक भों सिकोड़ते और मुंह मरोड़ते हुए कोई २ तो उन्हें निरा ढोंग और पाखण्ड तक कह देने का साहस करने लगे हैं। "कोई मरता है, तो मरे, जीता है–तो जिये, हमें किसीसे क्या मतलब ? हमें तो अपने काम से काम" ये हैं स्वार्थान्धता पूर्ण नीच विचार, जो मनुष्यों के अन्तःकरण में घर करते जा रहे हैं, और पारस्परिक प्रेम, निःस्वार्थ सेवा, सुख दुख में सहानुभूति व सहायता के भाव हवा में उड़ते चले जा रहे हैं। जब मनुष्य का मनुष्य और भाई का भाई के साथ यह व्यवहार है तो पशु आदि प्राणियों के साथ उसके बर्ताव का अनुमान मर लेना कोई कठिन बात नहीं। मनुष्य जाति का तीन चौथाई भाग निर्दयता पूर्वक पशु पक्षियों को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मार काट कर गले उतारता हुआ आज इस बात को निर्लज्जता के साथ कहने का साहस करने लगा है कि पशु पक्षी आदि सब प्राणी ईश्वर ने हमारे खाने पीने और मौज उड़ाने के लिये ही बनाए हैं। जैसे उनके जान ही नहीं !

दुनियाँ क्या चाहती है ?

यदि इस प्रश्न पर गंभीरता के साथ विचार किया जाय तो इन सब दुर्वासनाओं, कुविचारों और काले कारनामों के अन्दर केवल एक ही उद्देश्य कार्य करता हुआ दिखाई देता है– वह उद्देश्य है 'सुख की प्राप्ति'। मनुष्य चाहता है कि चाहे पुण्य के स्थान पर पाप और धर्म की जगह अधर्म या कुछ और ही क्यों न करना पड़े, किन्तु आनन्द मिलना चाहिये। दुःख है कि ज्यों २ मनुष्य पापादि पतित कार्यों की ओर बढ़ता जाता है त्यों २ उसे सुख और शांति के स्थान पर अशांति, व्याकुलता, व संकटों का ही सामना करना पड़ रहा है। यही कारण है जो दुनियां में पहिले से आज कहीं ज्यादा दुःखों की काली और निराशा पूर्ण घनघोर घटाएँ छाई हुई हैं। राज-प्रासाद से लेकर दीन दुखियों के झोंपड़ों तक एक अजीब बेचैनी अनुभव की जा रही है। यद्यपि भौतिक विज्ञान की चमत्कार पूर्ण खोजें मनुष्य के लिए भोगोपभोग की सामग्रियों में यथेष्ट वृद्धि और जीवन में सुविधाओं की नित नई सृष्टि करती चली जा रही हैं किन्तु सुविधाओं के बढ़ जाने पर भी सुख नहीं बढ़ा, सामग्रियों की वृद्धि हो जाने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पर भी शांति नहीं मिली। उल्टे मनुष्य की चिन्ताएं ज्यादा होगईं, दुःख बढ़ गये और मानवता का सर्वनाश हो गया।

यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो यह सब लोगों के भौतिकवाद के कुचक्र में फँस कर दुनियां के भोग विलासों को ही जीवन सर्वस्व समझने या खाने, पीने मोज उड़ाने को अपना लक्ष्य बना लेने का ही दुष्परिणाम है जो संसार को संकट के सागर में ढकेलता चला जा रहा है। बाहरी भोगोपभोग की इन नाना सामग्रियों की चकाचौंध ने मनुष्य की बुद्धि को अन्धा बना दिया है, जिससे वह अन्तरात्मा के प्रकाश को न देख कर स्वार्थान्ध होकर दुनियां की सम्पूर्ण सामग्रियों पर एकाधिकार करने के लिए भीषण दानवीय रूप में प्रकट हो रहा है। हम संसारी जीव आज से नहीं, अनादि से ही इन्द्रियों के दास, पाप वासनाओं में लिप्त विषयी व कषायी हो रहे हैं और इनके वश होकर अपने आपको भूल कर न जाने क्या २ दुष्कृत्य करते आ रहे हैं। यह सब इस लिये कि हमने पर वस्तुओं के भोगने में सुख समझ रक्खा है, और सच्चा सुख कहां है व कैसे वह मिल सकता है, इस बात पर भ्रमवश विचार ही नहीं किया। यही कारण है जो हम अब तक न तो स्वयं ही सुखी बन सके और न संसार में ही शांति स्थापित कर सके। सुख का सच्चा मार्ग न जानने तथा उसे कहीं का कहीं प्राप्त करने की मूर्खतापूर्ण कोशिशों के करते रहने के कारण होनाधिक रूप में अशांति और क्लेशों का अनुभव करते हुए हम अपने बहुमूल्य जीवन को अपने हाथों ही बर्बाद करते रहते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बिना किसी भेदभाव के प्राणीमात्र के सम्पूर्ण क्लेशों का अन्त कर उसे सच्चा सुख प्रदान करने तथा हाहाकारमय अशांत विश्व में शांति का शानदार साम्राज्य स्थापित करने के लिये ज़ोरों के साथ घोषणा करता हुआ—

जैन धर्म संदेश–

देता है कि सांसारिक विलासिता एवं ऐश परस्ती में सुख ढूंढने वाले भोले भाले मनुष्यो ! तुम जो संसार के विषय भोगों और धनादिक संपदाओं को ही अपने जीवन का सर्वस्व बनाए हुए हो, तथा भाई भाई से, पुत्र पिता से, एक जाति दूसरी जाति से और एक देश दूसरे देश से कुत्तों की तरह लड़कर तथा निर्बलों पर अत्याचार करते हुए उनका खून चूस कर सुखी बनने की कोशिश कर रहे हो, वह तुम्हारा भ्रम है। वासना, पाप, अत्याचार, अन्याय, अनीति, पाखण्ड और स्वार्थान्धता जैसी शैतानियत भरी शरारतों से दुनियां में कभी भी और किसी भी बलवान से बलवान मनुष्य को सुख और शान्ति नहीं मिल सकती, बल्कि तुम जितने अंशों में पापों, अन्यायों, अत्याचारों और वासनाओं के मार्ग पर क़दम बढ़ाओगे, उतने ही अंशों में अपने को भयानक अशान्ति व दुःख-सागर के भँवर के चक्कर में फँसे हुए पाओगे। आंखें खोल कर देखो, दुनियां में जो लोग स्वार्थान्ध हो कर पाप और दूसरों पर अत्याचार करते हुए वासनाओं को तृप्त करने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की कोशिश कर रहे हैं, क्या उनका जीवन सुखी है ? कदापि नहीं। जो जितना चालाक, मक्कार, दग़ाबाज़, बेईमान, बदमाश, ऐशपरस्त और स्वार्थान्ध है वह उतना ही व्याकुल, अशांत, दुःखी, चिन्तित, पतित और कायर है। हो सकता कि कोई चालाकी से दूसरों को धोखा देकर या पाप कर मन समझाने के लिये सुखी जैसा दिखाई देने लगे, किन्तु उसकी अन्तरात्मा ऐसा करके निराकुल कदापि नहीं बन सकती, और उसका वह क्षणिक सुख भी चकनाचूर हुए बिना नहीं रह सकता। इसलिये संसार के प्राणियों में सब से समझदार बनने का दम भरने वाले और इन्सान कहलाने का दावा रखने वाले मनुष्यो ! ज़रा अक़्ल से काम लो, कलेजे पर हाथ रख कर ठंडे दिल से विचार करो कि दुनियां में तुम्हारा क्या फ़र्ज़ है ? तुम हो कौन ? सुख नामक वस्तु, जिसके लिए तुम इतने व्याकुल हो और शैतान से बाज़ी लगा कर अँधाधुन्ध पाप वासनाओं के जाल में फँस कर दूसरों का गला दबोचने में लगे हुए हो, कहां रहती है, कैसे मिल सकती है, और इन्सान व हैवान में क्या अन्तर है, तथा तुम में इन्सानियत की कौन २ सी खूबियां हैं कि जिनसे तुम इन्सान ही कहलाओ ? धन व आत्मा का और आत्मा व शरीर का क्या सम्बन्ध है, तथा संसार में सुख व शान्ति कैसे क़ायम हो सकती है, और प्रत्येक प्राणी वास्तविक सुख को कैसे प्राप्त कर सकता है ?

यदि तुम स्वयं इन बातों को नहीं जानते, तो सुनो और अच्छी तरह समझ लो कि शैतान की भांति पाप और अत्याचार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करने से तथा विषय वासनाओं में लिप्त होते जाने से तुम्हें रञ्च मात्र भी सुख नहीं मिल सकता। यदि ऐसा करने से सुख मिलता तो आज तक किसी न किसी मनुष्य को अवश्य मिल जाता, क्योंकि ऐसे कौन से पाप और अत्याचार हैं जो मनुष्य द्वारा नहीं किये गये और नहीं किये जा रहे ? इतिहास के पन्नों को पलट कर देखो और अपनी दृष्टि दुनियां में होने वाले वर्तमान दुष्कर्मों पर भी दौड़ाओ, फिर तुम स्वयं ही जान जाओगे कि सचमुच प्रत्येक बड़े से बड़ा पाप भी करने से शेष नहीं रहा। तो भी उससे पाप करने वाले को सुख न मिल सका; प्रत्युत् पापी और अत्याचारी मनुष्य को आज नहीं तो कल और कल नहीं तो फिर, एक न एक दिन उनका दुष्परिणाम ही भोगना पड़ा और अत्याचारों को करते हुए दूसरों को कष्ट पहुँचा सो अलग।

इस लिये यदि तुम सुखी बनना चाहते हो और दूसरों को सुखी बनाते हुए संसार में शान्ति स्थापित करना चाहते हो तो सर्व प्रथम—

विश्वप्रेम—

के पवित्र सूत्र में बँध जाओ, और अपने से भिन्न किसी भी सम्प्रदाय, जाति, वर्ग, या देश के मनुष्यों से घृणा व द्वेष मत करो तथा उनसे समानता व प्रेम का मित्रतापूर्ण व्यवहार करो, इतना ही नहीं; किन्तु पशु पक्षियों एवं कीड़े मकोड़ों को भी अपनी ही तरह जानदार समझते हुए बेरहमी से कभी मत

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सताओ, और उनके प्राणों की रक्षा का यथाशक्ति ध्यान रक्खो। जब तक एक मनुष्य या प्राणी दूसरे मनुष्यों और प्राणियों को हृदय से प्यार नहीं करता और उनके दुख को अपने दुःख के समान अनुभव नहीं करता; बल्कि उनको सताता रहता है व उनके सुख की कुछ भी परवाह नहीं करता तब तक संसार में शान्ति का होना कठिन ही नहीं, असंभव है; क्योंकि जब तुम दूसरों को स्वार्थवश सताओगे और उनके सुख में बाधा डालोगे तो यह स्वाभाविक है कि वे इसका बदला तुम्हें सता कर या तुम्हारे सुख साधनों को नष्ट भ्रष्ट करके लें। यह सोच कर मत इतराओ कि आज हम धनवान और बलवान हैं, कोई हमारा क्या कर सकता है? क्योंकि बड़े २ अभिमानियों का घमंड, जो आस्मान से बातें करते थे; कभी न कभी मिट्टी में मिल चुका है। इसलिए इस तथ्य को समझ लो कि जिस धनादिक सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए और उससे सुखी बनने के लिए मनुष्य मदांध होकर पाप पुण्य की परवाह करना नहीं चाहता और उसके प्राप्त हो जाने पर इतराता व फूला नहीं समाता है; एवं सम्पत्तिहीन मनुष्यों को तुच्छ समझ कर उनका तिरस्कार करता और पैरों से रौंधने तक की कोशिश करने लगता है, वह सम्पत्ति स्थायी चीज़ नहीं है और न उससे आत्मा का कल्याण या सच्चे सुख की प्राप्ति ही हो सकती। बड़े २ चक्रवर्तियों ने जो एड़ी से चोटी तक महान परिश्रम कर अपने शानदार साम्राज्य स्थापित किये थे और असंख्य संपत्तियों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का स्वामित्व प्राप्त किया था, उनमें से एक को भी स्थायित्व प्राप्त न हो सका, और उन्हें अन्त समय हाथ मल २ कर पश्चाताप करते हुए ही खाली हाथ जाना पड़ा। अतः मदमत्त बनकर यह भूल न जाओ कि इन दीन हीन दीखने वाले प्राणियों में भी तुम्हारी ही तरह आत्मा मौजूद है, और प्रत्येक तुम जैसी ही सुख दुःख अनुभव करनेकी शक्ति रखता है। इसलिए तुम सब प्राणियों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि एक दूसरे को अपने ही समान समझते हुए आपस में प्रेम से मिलकर रहो, और किसी भी कार्य को करते समय इस बात का ध्यान रक्खो कि उसके द्वारा किसी को कष्ट न होने पावे; किन्तु जहां तक हो उससे दूसरों का हित ही हो।

वास्तविक दृष्टि से संसार का प्रत्येक प्राणी परमात्मस्वरूप है। परमात्मा उसे कहते हैं जो राग द्वेष रहित, सर्वज्ञ, पूर्ण सुखी, अनन्त शक्तिसम्पन्न, जन्म मरण से रहित, निर्दोष और निष्कलंक हो। ऐसे परमात्मा बनने की शक्ति सम्पूर्ण संसारी भव्य आत्माओं में विद्यमान हैं, और वही आत्मा का असली स्वरूप है। भेद यह है कि संसारी आत्माएँ राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि विकारों और पापवासनाओं में फँसी हुई हैं, व जन्म मरणादि के कष्टों को भोग रही हैं; किन्तु परमात्मा इन सब झंझटों से मुक्त है। सांसारिक आत्माएँ चूंकि नाना प्रकार के पाप पुण्यादि कर्मों को करती रहती हैं, अतः उनके फलस्वरूप उनकी अवस्थाएँ भी विचित्र होती रहती हैं; किन्तु यह निश्चित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है कि प्रत्येक आत्मा का स्वभाव आनन्दमय है। इसलिए प्रत्येक आत्मा सुख चाहती और दुःखों से डरती है, एवं अपने को सुखी बनाने के लिए ही वह भ्रमवश नाना प्रकार के भले बुरे कार्यों को करती रहती है; किन्तु सुख पाने का सच्चा मार्ग मालूम न होने से वह वास्तविक सुख तो पा ही नहीं पाती; वरन् संसार में भी शांति से नहीं जीने पाती।

सम्पूर्ण प्राणियों में एकसा आत्मा मौजूद रहने और उनके सुख पाने के इच्छुक होने से समस्त आत्माएँ एक ही मर्ज़ की मरीज़ हैं तथा परस्पर में एक दूसरे से भाई भाई की तरह प्यार व सहानुभूति पाने की हक़दार हैं। ऊपर यह बताया जा चुका है कि आनन्द या सुख आत्मा का ही स्वभाव या गुण है। वह सुख संसारी आत्माएँ अपनी ही काली करतूतों के द्वारा नष्ट भ्रष्ट करके दूसरी चीज़ों में सुख ढूंडती फिरती हैं। इसलिये जैनधर्म कहता है कि ए प्राणियों! जबकि सुख अपनी आत्मा का ही गुण है, और वह स्वतंत्रतापूर्वक आत्मा में ही प्राप्त हो सकता है, तो फिर सांसारिक वस्तुओं से सुखी बनने और उन्हें प्राप्त करने के लिये आपस में कुत्तों की भांति स्वार्थान्ध होकर लड़ने झगड़ने, और पापादि नीचतापूर्ण कार्यों के करने की क्यों मूर्खता करते हो?

तुम्हें यह जान लेना चाहिये कि संसार में जीव अनंतानंत हैं और उनकी तृष्णा उनकी संख्या से भी कई गुणी एक २ प्राणी में विद्यमान रहा करती है। इधर संसार में विषय भोगों की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सामग्रियां वैसे ही परिमित हैं, जिनकी पूर्ति प्रत्येक प्राणी अव्वल तो कर ही नहीं सकता, और यदि थोड़ी देर के लिये कर भी ले तो उन्हें एक साथ भोग कर उनसे सुखी नहीं बन सकता, जबकि सुख आत्मा का गुण है, न कि आत्मा से भिन्न किसी दूसरी भोगपभोग की सामग्री का, जो कि उनके भोगने से प्राप्त हो जाय। प्रत्युत् जितनी २ भोग सामग्रियों की वृद्धि होगी उतनी ही आकुलता और अशांति की भी। अतः समझदारो इस बात पर ज़ोर देती है कि दुनियां के ए समझदार प्राणियो! यदि तुम वास्तव में अपना हित चाहते हो और सम्पूर्ण दुःखों से छुटकारा पाकर शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते हो तो संसार के इन विषैले विषय भोगों को आदर्श मान उनकी पूर्ति के लिये आकुल व्याकुल होकर आत्मशांति भंग करना, और साथ ही दूसरों पर अत्याचार कर उनकी शांति को नष्ट करना, जितने जल्द हो सके, छोड़ दो। इसके साथ ही अपना पारलौकिक उद्देश्य, आत्मोन्नति करते हुए, परमात्मपद प्राप्त करना बनाओ, एवं संसार में सुख शांति की वृद्धि के लिये दूसरों के उचित व अपने ही समान अधिकारों की रक्षा करना, अपने न्याय से प्राप्त भोगों को संतोष से भोगते हुए दूसरे दीन दुखी प्राणियें के दुःखों पर तरस खाकर उनकी हर प्रकार रक्षा व प्रेमपूर्ण निःस्वार्थ सेवा करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझो।

जो व्यक्ति भ्रमवश या जान बूझ कर उपरोक्त बहुमूल्य संदेश को पागलों की बकवास कह कर ठुकरावेगा और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्वार्थान्ध होकर दूसरों पर जुल्म करते हुए खाने, पीने, मौज उड़ाने को ही अपने जीवन का आदर्श बना लेगा, तथा आत्मा परमात्मा आदि तत्वों पर कुछ लक्ष्य न देगा; जैनधर्म की दृष्टि में वही नास्तिक है, और अपने साथ दूसरों के सुख व शांति को भी कुचलने का पूरा २ जिम्मेदार है। इसलिये जैनधर्म चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक, उपर्युक्त बातों को सर्व प्रथम ठंडे दिल से विचारे और उन पर अमल करे, ताकि संसार के सम्पूर्ण प्राणी शांति के साथ जीवन व्यतीत कर सुखी बन सकें।

इस विश्व प्रेम से ओत प्रोत सुखमय संदेश की घोषणा करने के अनन्तर ही मनुष्यों की सैद्धान्तिक भिन्नता एवं मतभेदों के कारण होने वाले आपसी विद्वेषों को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने, अनेकता में एकता और समता स्थापित करने, तथा हठ व पक्षपातपूर्ण नीति का अन्त कर विचारों में उदारता और सहिष्णुता को पैदा करने, एवं मनुष्यों के एकांगिक वस्तु विज्ञान को पूर्णता की ओर ले जाने के लिये जैनधर्म—

"स्याद्वाद"

का चमत्कारपूर्ण आविष्कार कर दुनियां को दूसरी बहुमूल्य शिक्षा भेंट करता है। स्याद्वाद का अर्थ अपनी दृष्टि, विचार और कथन को संकुचित, हठ व पक्षपातपूर्ण न बनाकर उदार, निष्पक्ष एवं विशाल बनाना है। प्रायः देखा जाता है कि एक सम्प्रदाय दूसरे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सम्प्रदाय से, एक जाति दूसरी जाति से, एक पार्टी दूसरी पार्टी से, और यहां तक कि एक भाई दूसरे भाई से इसलिये लड़ता है कि उससे भिन्न सम्प्रदाय, जाति, पार्टी या भाई के विचार उसके विचारों से भिन्न हैं, उसके अनुकूल नहीं।

मतभेद और दृष्टिकोण की भिन्नतामात्र से धर्म के नाम पर प्राचीन समय में भी जो लोगों ने साम्प्रदायिकता के नशे में मत्त हो कर अपने से भिन्न सम्प्रदाय और विचार के निरपराध लोगों पर जो असंख्य और निर्मम अत्याचार किये हैं, एवं उन्हें जिंदा जला कर, कोल्हू में पेल कर, तलवार के घाट उतार कर, दीवारों में चिनवा कर और खाल खींच भुस भरवा अपने इन राक्षसी कृत्यों द्वारा धर्म के पवित्र नाम को कलंकित कर इतिहास के पृष्ठों को रक्तरंजित किया है वह सभी विज्ञ पाठकों से छिपा नहीं है। ईसाइयों के रोमन कैथलिक और प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायों में परस्पर जो खूनख़राबियां हुईं और हिन्दुओं में बुद्धदेव को चौबीसवां अवतार स्वीकार कर लिये जाने पर भी जो शङ्कराचार्य के ज़माने में बौद्ध और जैन लोगों पर भीषण अत्याचार किये गये, एवं मुसलमानों ने जो इस्लाम का प्रचार प्रेम से करने की अपेक्षा तलवार के ज़ोर से करने का दुष्प्रयत्न कर अपने से भिन्न मतानुयायियों पर असंख्य अत्याचार किये, तथा उन्हें काफ़िर बता कर मौत के घाट उतारा, यह सब साम्प्रदायिकता का दुष्फल नहीं तो और क्या था? जिसकी कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति भर्त्सना किये बिना नहीं रह सकता।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आज भी कट्टर मुसलमान हिन्दुओं या ईसाइयों को अपना महान् शत्रु सिर्फ़ इस लिए समझते हैं कि उनके विचार उनके मान्य कुरान शरीफ़, खुदा और रीति रिवाजों के अनुकूल नहीं हैं। इसी तरह अनुदार हिन्दू—जैनियों, मुसलमानों या ईसाइयों को भी मतभेद होने से अपना पक्का शत्रु समझते और लड़ते झगड़ते रहते हैं। यद्यपि संसार के अधिकतर धर्म अपने २ शास्त्रों में मान्य एक ही ईश्वर, खुदा या God को सारी दुनियां का सृष्टा तथा उसका भाग्य-विधाता मानते हैं, और इस लिये उनके मतानुसार जिस परम पिता, खुदा या God ने हिन्दू को बनाया उसी ने मुसलमान या ईसाई को भी पैदा किया, यह बात सिद्ध होती है। फिर भी कट्टर मुसलमान हिन्दुओं की हस्ती मिटा देने और कट्टर हिन्दू मुसलमानों आदि को नेस्तोनाबूद कर देने की दिली ख्वाहिश (इच्छा) रखता है, और अपने संकुचित व अनुदार दृष्टिकोण के द्वारा मजे में अपने ही मान्य धर्म शास्त्रों का गला घोंटता रहता है। "क्योंकि इसके विचार मेरे विचारों से भिन्न हैं" प्रायः यही सोच कर मानव समाज का अधिकांश भाग कभी २ एक दूसरे के प्राणों तक का अपहरण करने पर तुल जाता है। अकेले भारत में ही धर्म के पवित्र नाम पर लोग कितने भीषण दंगे कर डालते हैं !

इस मत भिन्नता से होने वाले झगड़ों और विरोध को दूर करने के लिये जैन धर्म कहता है कि अनादि काल से ही संसार में प्रत्येक प्राणी के विचार एक दूसरे से भिन्न रहे हैं, व

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रहेंगे; क्योंकि हर एक के विचार उसकी अपनी परिस्थिति, समझ एवं मानसिक इच्छाओं तथा आवश्यकताओं के भिन्न होने से एक से हो जाना नामुमकिन सा है। सबका ज्ञान और उसके साधन भी परिमित व भिन्न हैं। यह बात दूसरी है कि किसी विषय या बात के सम्बन्ध में एक से अधिक भी मनुष्य सहमत हो गये हों या हो जायें, किन्तु यह असम्भव है कि सम्पूर्ण मनुष्यों के विचार किसी भी समय एक से हो जायें। यही कारण है जो एक ही पिता के एक साथ पैदा होने वाले दो पुत्रों के विचारों में भी जमीन और आस्मान से भी अधिक अन्तर दिखाई देता है। प्रत्येक वस्तु में अनेक गुण या स्वभाव व अवस्थाएँ हुआ करती हैं, कोई वस्तु को किसी रूप में देखता है और उस पर विचार करता है, दूसरा दूसरी दृष्टि से। जो दूसरी दृष्टि से देखता है वह किसी दृष्टि से ठीक हो सकता है, और तुम्हारा दूसरी दृष्टि से; किन्तु इसके यह मानी नहीं कि तुम्हारी एकांगिक दृष्टि ही ठीक है, तथा दूसरों की ग़लत, और इस लिये सब को तुम्हारी ही दृष्टि से देखना चाहिये व दूसरे पहलू से उस बात या वस्तु पर विचार ही नहीं करना चाहिये; क्योंकि अपनी २ दृष्टि से विचार करने में सब स्वतन्त्र हैं और सब ही का ज्ञान वस्तु के एक गुण या भाग पर दृष्टि रखने के कारण एक अंशात्मक ज्ञान है न कि पूर्ण ज्ञान। एक मनुष्य किसी को बाप होने से पिता कहता है तो दूसरा उसे ही भाई के नाते भाई, और बहनोई के नाते बहनोई भी कह सकता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है, और उस एक ही मनुष्य में भ्रातृत्व, पितृत्व (भाईपन या पितापन) आदि सम्बन्धों के होने में कोई बाधा नहीं आती बात है भी ऐसी ही; किन्तु जो मनुष्य अपने पिता को अपना पिता होने से उसे दूसरों का भी पिता समझता फिरे, और उसके भाई कहने या बहनोई होने पर बहनोई कहने से लड़ता झगड़ता फिरे तो यह क्या मूर्खता, हठग्राहिता और पक्ष-पात पूर्ण बात न होगी ? इस लिये जैन धर्म यह बतलाता है कि भाइयो ! यदि तुम सचमुच ही शान्ति के इच्छुक हो तो दुनियां के प्रत्येक प्राणी को अपना मित्र समझते हुए उससे उदारता का व्यवहार करो और मतभेद होने मात्र से किसी को अपना दुश्मन समझ कर उससे द्वेष या झगड़ा मत करो; क्योंकि विभिन्न प्राणियों के नाना स्वभाव और बिचित्र दृष्टिकोणों के होने के कारण मतभेद होना स्वाभाविक है। अतः स्याद्वाद मय सुनीति को अपना कर प्रत्येक बात या वस्तु के स्वरूप पर अपने दृष्टिकोण को निष्पक्ष और उदार बना कर हर पहलू से विचार करो। इसके अतिरिक्त संसार में सैकड़ों संप्रदाय अपने अपने ऋषि-महर्षियों की समझ व उनके ज्ञान और अनुभव के द्वारा स्थापित किये गये हैं। उन्हें देख कर झुँझलाओ या घृणा मत करो और न उनके अनुयायियों की पूजा पाठ आदि धार्मिक क्रियाओं में ही विघ्न डालो, क्योंकि जैसा जिसने समझा है वह उसके अनुसार अपना धार्मिक कर्त्तव्य करे तो इसमें तुम्हारी क्या हानि है ? उसे वैसा करने से रोकने के लिये जोर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ज़बर्दस्ती करना कदापि धर्म नहीं हो सकता। यदि तुम अपने विचारों के अनुकूल ही सब लोगों से धार्मिक क्रियाएँ करवाना चाहते हो तो अपने मान्य सिद्धांत का प्रेमपूर्वक प्रचार करो, इसमें यदि आंशिक सफलता भी मिल जाय तो उसे बहुत समझो; किन्तु ज़बर्दस्ती लड़ झगड़ कर अपने विचार दूसरों पर लादने का दुष्प्रयत्न कभी न करो, जो कि कभी सफल नहीं हो सकता। हो सकता है कि कोई जानबूझ कर या बिना जाने ग़लती कर रहा हो या उसने वस्तु के स्वरूप व अन्य बातों को ग़लत समझ रक्खा हो, तो भी उससे द्वेष न कर यदि तुम से बन सके और तुम उसे समझाने का पात्र समझो तो उसे वास्तविकता समझा दो, वर्ना मध्यस्थ रहो और उसकी मूर्खता पर या ज्ञान की हीनता पर झुँझलाओ नहीं, बल्कि दया करो। असहिष्णु बन कर लड़ने झगड़ने की कोशिश कदापि मत करो। ऐसे समय पर शान्ति से काम लो और जहां तक हो सके दूसरों के विचार भिन्नता सम्बन्धी झगड़ों को, जो उनके पक्षपात और एकांतवाद की नीति पर डटे रहने के कारण पैदा होते हैं, स्याद्वाद के द्वारा वस्तु की खूबियों को दिखाते हुए उन्हें उनकी कमी समझा कर दूर करो तथा परस्पर में प्रेम के साथ वस्तु के स्वरूप पर विचार करो। इतने पर भी यदि कोई अपने मिथ्या विचारों पर ही पक्षपात के कारण डटे रहना चाहता है तो उसे डटे रहने दो; क्योंकि वह अपने स्वभाव, मूर्खता, या कमज़ोरी के कारण ऐसा करने के लिये विवश है, किन्तु तुम्हें उससे लड़ने या उसे मारने पीटने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का कोई अधिकार नहीं है—जब कि तुम्हारी ही तरह अपने स्वतन्त्र विचार रखने के लिये वह पूर्ण स्वतन्त्र है।

अपने विचारों को उदार, सहिष्णु और पक्षपातहीन बनाने के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति के हित की दृष्टि से यह उसका प्रथम कर्त्तव्य है कि वह अपनी नीति सत्य को ग्रहण कर असत्य को त्यागने की बनावे। जो सत्य हो वही अपना है न कि जो अपना माना हुआ है वही सत्य। इस दृष्टिकोण के साथ ही वस्तु के प्रत्येक गुण को जानने की इच्छा रखने वाला, और एक बात या गुण को पकड़ कर शेष की ओर से आंखें बन्द न करने वाला मनुष्य ही वास्तविक विचारक और वस्तु तत्व का ज्ञाता व द्रष्टा बन सकता है, तथा तभी संसार के मतभेद सम्बन्धी झगड़ों का सरलता के साथ अन्त हो सकता है।

इस प्रकार जैनधर्म दुनियां के प्रत्येक प्राणी को मतभेद रहते हुए भी परस्पर में मित्रता के साथ रहने, तथा फूट, कलह विसंवाद व विरोध को दूर कर—समता, स्वतंत्रता,निर्भयता और वात्सल्य का पूर्ण समर्थन करता हुआ जोरों से घोषणा करता है कि मतभेद मात्र से किसी से घृणा और द्वेष करना कदापि उचित और धर्म नहीं हो सकता। धर्म का उद्देश्य और स्वरूप तो विषमता तथा द्वेष का अन्त कर संसार में समता और प्रेम को स्थापित करना है। अतः यदि कोई सम्प्रदाय या धर्म प्राणियों में परस्पर द्वेष, विषमता, हिंसा, कलह या फूट का बीज बोता है तो वह धर्म नहीं अधर्म है, और उसका प्रचारक धर्मात्मा नहीं, पापी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है। ऐसे धर्म का तो जितने जल्द नाश हो जाय, प्राणियों के हित की दृष्टि से उतना ही अच्छा। सत्य और शांति के समर्थक प्रत्येक व्यक्ति का यह परम कर्त्तव्य है कि वह ऐसी घृणित, विषाक्त और नीचतापूर्ण बातों को मानने से साहस पूर्वक तुरन्त इन्कार कर दे।

विश्व प्रेम और स्याद्वाद इन उपर्युक्त दो संदेशों की जिस जैनधर्म ने महत्वपूर्ण वैज्ञानिक रीति से दुनियां के अशांत और दुखी प्राणियों को बिना किसी भेदभाव के उनका हित करने के लिए घोषणा की है वह—

जैन-धर्म क्या है ?

इस प्रश्न का संक्षेप में उत्तर देना बड़ा कठिन है; क्योंकि इसके जिन विशाल, उदार और गम्भीर सिद्धान्तों की विषद व्याख्या जैनाचार्यों ने महान ग्रन्थरत्नों द्वारा प्रकट की है उसे देखते हुए यह प्रयास हँसी का पात्र हुए बिना नहीं रह सकता। फिर भी 'अमृत थोड़ा सा भी सुखकर होता है' इस उक्ति को सामने रखकर मोटी २ थोड़ी सी हितकर बातों का कथन कर देना पाठकों को अवश्य लाभकर होगा।

जिस महापुरुष ने राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध, मान आदि कर्म शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर ली हो और आत्मा को पूर्ण सुखी व अनन्त ज्ञान का भंडार बना लिया हो, उसे 'जिन'

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कहते हैं (मोहादि कर्म शत्रून् जयतीति जिनः) और इस ही वीर एवं महापुरुष के द्वारा जो विश्व के दुखी प्राणियों को भेद-भाव के बिना कल्याणमय सच्चा मार्ग प्रकट किया जाता है, जिससे कि संसार की दुखी आत्माएँ उसके ही समान परमात्मा बन सकें, उस मार्ग को ही जैनधर्म कहते हैं। सारांश यह कि सांसारिक आत्माओं की दीनता को दूर कर वीरता के साथ पापवासनाओं व रागद्वेषादि विकारों पर उन्हें पूर्ण विजयी बनाकर वास्तविक आनन्द तथा शांति के प्रशस्त मार्ग पर लेजा परमात्मपद प्रदान करने वाले धर्म को जैनधर्म कहते हैं। यह जैनधर्म का संक्षिप्त शाब्दिक विवेचन है। अब ज़रा इसके अर्थ और अभिप्राय पर भी गंभीरता के साथ विचार कीजिये।

जैनाचार्यों के कथनानुसार धर्म ही ऐसी वस्तु है जो प्राणीमात्र को संसार के दुःखों से छुड़ा कर उत्तम सुख (वास्तविक आनन्द) प्रदान कर सकती है। वह न केवल परलोक में सुख देने वाली चीज़ है; बल्कि सच्चा धर्म वह है जो जिस क्षण से पालन किया जाता है उसी क्षण से सर्वत्र और सर्वदा आत्म शांति प्रदान करता है और अपने साथ दूसरों को भी सुखी बनाता है।*

नोट*—जैनसिद्धान्तानुसार धर्म, मंदिरों या मूर्तियों में, तीर्थक्षेत्रों या धर्मशास्त्रों में चिपकी रहने वाली वस्तु नहीं है, जिसे हम वहां पहुंच कर पकड़ सकते या प्राप्त कर सकते हों; बल्कि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सुख का प्रशस्त मार्ग

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र

यह पहिले ही बतलाया जा चुका है कि प्रत्येक आत्मा में वही गुण स्वभाव से विद्यमान हैं जो कि परमात्मा या उपरोक्त 'जिन' में। किन्तु परमात्मा में वे गुण विकास को प्राप्त हो चुके हैं, और संसारी आत्माओं के वही गुण राग द्वेषादि विकारों के कारण दबे हुए हैं। जो आत्मा अपने में अनन्त ज्ञानादि गुणों की झलक पाकर अपने असली स्वरूप को समझ उसका अनुभव करने लगता है और यह अटल श्रद्धा कर लेता है कि मैं अपनी आत्मा को सत्प्रयत्नों द्वारा कर्म कलंक से पवित्र कर परमात्मा बना सकता हूँ, उसे सम्यक्दृष्टि और उसकी उक्त श्रद्धा को सम्यक्दर्शन कहते हैं। यह सम्यक्दर्शन ही धर्म रूपी पेड़ की

धर्म तो अपने आत्मा के ही उत्तम और स्वाभाविक गुणों का नाम है। मंदिर, भगवान की मूर्तियां या तीर्थ स्थान तो इन गुणों का विकास करने के साधन हैं, और चूंकि साधनों से ही साध्य की सिद्धि हुआ करती है इसलिये इन धर्म स्थानों की भी यथा योग्य प्रतिष्ठा करते हुए उनसे आत्म-हित साधन करने का प्रयत्न करना चाहिये।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जड़ है। जिस मनुष्य या प्राणी को आत्मा व उसके पवित्र हो सकने पर विश्वास नहीं है, और जो पांच अजीव तत्वों के सम्मिश्रण से (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के मिलाप से) आत्मा की उत्पत्ति, व मरने के बाद अपने को मिट्टी में मिल जाना समझता है, वह कुछ भी धर्म कर्म नहीं कर सकता, और करे भी तो किस लिये, जब कि मरने के बाद मिट्टी में मिल जाना है ? किन्तु जो आत्मा को शरीरादि अजीव तत्व से भिन्न अनुभव कर उसके असली स्वरूप को प्राप्त करना चाहते हैं वही आत्म-उन्नति के पवित्र कार्यों को रुचि के साथ कर सकते हैं, और अहिंसा, सत्य आदि सदाचरण द्वारा अपने साथ दूसरों को सुखी बनाने का सत्प्रयत्न करते रह सकते हैं।

इस लिए सर्व प्रथम यह आवश्यक है कि हम अपने को समझलें कि हम हैं क्या ? जब तक हमें यह नहीं मालूम, तब तक अपने उद्धार या दूसरों की सेवा का पवित्र कार्य करना हमारे लिये असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य रहेगा। हम एक शरीरादि अचेतन वस्तुओं से भिन्न–ज्ञान, दर्शन, सुखादि गुण संयुक्त आत्मा नाम के सचेतन पदार्थ हैं। यह आत्मा न तो कभी नष्ट होता और न कभी उत्पन्न। यह एक अमूर्तिक (आंखो से न दीखने वाला) अखंड (टुकड़े न होने वाला) और अनादि काल से अनन्त काल तक रहने वाला द्रव्य है। आत्माओं की संख्या अनन्तानन्त है, और प्रत्येक का आकार अपने अपने शरीर के बराबर है। इसके प्रदेशों में संकुचित होने (सिकुड़ने) और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

फैलने की शक्ति प्रकाश की भांति विद्यमान है। इसके प्रदेश यदि फैलने लगें तो एक ही आत्मा तीनों लोक में भी अपने प्रदेशों को फैला सकता है। यह आत्मा कर्मों से बँधा रहने और राग, द्वेष, मोहादि करने से संसार में नाना प्रकार कष्टों को भोगता फिरता है; यदि इन्हें न करे और कर्मों को नष्ट करदे तो अपनी स्वाभाविक परमात्मा रूप अवस्था को प्राप्त हो जाता है। ऐसा समझने वाले सम्यक्दृष्टि पुरुष ही संसार में पूर्ण निःशङ्क और निर्भय हो सकते हैं; क्योंकि वे समझते हैं कि आत्मा शरीर को बदल लेने के बाद भी मर नहीं सकता और न संसार की किसी वस्तु के संयोग वियोग से आत्मा का भला बुरा हो सकता। वे इन वस्तुओं के संयोग वियोग को कर्माश्रित समझते हैं व उससे आत्मा का हिताहित होना अनुभव नहीं करते। इसी लिए जिस क्षण से किसी व्यक्ति को सम्यक्दर्शन होता है उसी क्षण से उसके मोह व विशेष चिन्ता, शोक और तीव्र क्रोध, मान, माया, लोभादि का अभाव हो जाने से मानसिक अशान्ति का बहुत कुछ नाश होजाता है, और वह पहिले की अपेक्षा बहुत सुखी बन जाता है।

सम्यक्दर्शन के साथ ही आत्मा में जो तत्वों का यथार्थ ज्ञान पैदा होता है उसे सम्यक्ज्ञान कहते हैं। हजारों शास्त्रों के पढ़ लेने व लाखों बातों के जान लेने पर भी यदि किसी को आत्मज्ञान नहीं है तो वह व्यक्ति सम्यक्ज्ञानी बनने का दावा नहीं कर सकता; किन्तु आत्मज्ञानी पुरुष बिना हजारों शास्त्रों को पढ़े व

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अन्यान्य बातों को जाने हुए भी सम्यक्ज्ञानी है। सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति एवं वृद्धि करने के लिए सच्चे शास्त्रों का पढ़ना, सच्चे उपदेशों का सुनना व वीतराग देव के दर्शनादि करना विशेष लाभदायक साधन हैं। इस सम्यक्ज्ञान के बिना धर्म के मार्ग पर चलने की कोशिश करना ऐसे ही है जैसे कि रोग हो जाने पर बिना जानी दवा को पी जाना।

उपरोक्त सम्यक्दर्शन व सम्यक्ज्ञान के साथ जो आत्मा को पवित्र करने की कोशिश में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह इन पाप कार्यों का तथा क्रोध, मान, माया, लोभादि रूप खोटे भावों का त्याग किया जाता है, एवं अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, संतोष, संयम, तपश्चरणादि रूप क्रियाओं का पालन किया जाता है उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। इस सम्यक्चारित्र के पालन से ही संसार में शान्ति और सुख की वृद्धि हो सकती है और आत्मा कर्म कलंक से पवित्र होकर परमात्मा बन सकतीहै। सम्यक्दर्शन और ज्ञान के हो जाने पर सम्यक्चारित्र का पालन न करना ऐसे ही है जैसे कि किसी रोग की ठीक २ औषधि जान लेने और उस पर विश्वास कर लेने के बाद भी उसका सेवन न करना और बदपरहेज़ी करना। जैसे अच्छी से अच्छी दवा भी बिना खाये रोग को नष्ट करने में असर्थ है वैसे ही यह जान लेने और विश्वास कर लेने पर भी कि मैं आत्मा से परमात्मा बन सकता हूँ और मुझ में भी वही शक्तियां विद्यमान हैं जो परमात्मा में हैं, अपनी आत्मा को पवित्र करने वाले शील,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

संयम, तपश्चरण, दया, क्षमा आदि भावों व कार्यों में प्रवृत्ति नहीं करता और हिंसा, झूठादि पाप व क्रोधादि कषायमय दुर्भावों को करने रूप बदपरहेजी करता है, वह दुःखों से कैसे मुक्त हो सकता है ? अस्तु,

इस सम्यक्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय के प्रभाव से महान् पापिष्ठ और पतित आत्माएँ भी परमात्मा बन सकती हैं। कल्याण और आत्मोन्नति का इच्छुक प्रत्येक प्राणी, चाहे वह किसी भी अवस्था में क्यों न हो, उपरोक्त रत्नत्रय अर्थात् सम्यक्-दर्शन, ज्ञानचारित्र, रूप धर्म को धारण करने में पूर्ण स्वतन्त्र है। यह धर्म किसी व्यक्ति, जाति, या समाज विशेष की सम्पत्ति न हो कर प्राणी मात्र की सम्पत्ति है और प्रत्येक व्यक्ति उससे अपना व दूसरों का कल्याण कर सकता है। ऐसा होना ही चाहिये। यदि कोई धर्म किन्हीं विशेष व्यक्तियों, जातियों अथवा वर्ग के लोगों तक ही सीमित रहना चाहता है और वह प्राणी मात्र का भला करने अथवा उनको सहारा देने से इन्कार कर देता है, या परस्पर में विद्वेष फैला कर संसार में अशान्ति उत्पन्न करता है तो वह धर्म सार्वधर्म, या सत्यधर्म अथवा विश्वधर्म या राष्ट्रधर्म कहलाने का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता।

धर्म की उपर्युक्त व्याख्या करके संसार के प्रत्येक प्राणी का भला चाहने और उसे सहारा देकर परमात्मा तक बना देने का दावा रखने के कारण जैनधर्म स्वभावतः राष्ट्रधर्म, और उस से भी बढ़कर सार्वधर्म या विश्वधर्म कहलाने का अधिकारी स्वतः सिद्ध हो जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन आचार्यों का यह आदेश है कि प्रत्येक व्यक्ति को संसार में फैले हुए हर एक 'धर्म' नामक वस्तु पर या देवी, देवताओं, धर्म, शास्त्रों और गुरुओं पर अन्धे होकर विश्वास कभी न करना चाहिये। जब हम पैसे को हांडी को भी ठोक बजा कर मोल लेते हैं तो जिस धर्म या देव, गुरु आदि के द्वारा हम संसार समुद्र से पार हो कर सच्चा सुख प्राप्त करना चाहते हैं, उसका अन्धे हो कर सहारा लेना, चाहे उससे हानि के बदले लाभ ही क्यों न हो, बुद्धिमत्ता नहीं हो सकती। इस लिये प्रत्येक समझदार व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह सत्य की कसौटी पर धर्म से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु को कसे, और इसके बाद ही उस पर विश्वास करे। इसके परखने की कसौटी निम्न प्रकार है—

सच्चा देव—

वही हो सकता है जो सर्वज्ञ (विश्व के सम्पूर्ण पदार्थों और उनकी हालतों को स्पष्ट जानने वाला) वीतराग (निर्दोष) और हितोपदेशी अर्थात् जो निःस्वार्थ होकर समस्त प्राणियों को उनके हित का सच्चा मार्ग दिखाता हो। इन गुणों से विशिष्ट चाहे कोई हो, वही सच्चा देव, साकार परमात्मा, अर्हंत, जिनेन्द्र या तीर्थंकर, भगवान्, खुदा, God, विष्णु, शिव, ब्रह्म आदि कई नामों से पुकारा जा सकता है। ऐसे आदर्श देव के गुणों की उपासना, उसके नाम आदि का पक्षपात छोड़कर, श्रद्धा और भक्तिपूर्वक करना ही आत्मोन्नति में सहायक हो सकती है, और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसलिए नाम पर न लड़कर गुणों की ही उपासना करना चाहिये। किन्तु जो इन गुणों में से किसी एक भी गुण से हीन है अर्थात जो सम्पूर्ण दोषों से रहित नहीं है, या सब बातों का जानकार नहीं है और मूर्ख है, अथवा जीवों को कल्याण का रास्ता बता कर उन्हें अपने समान बनने का उपदेश नहीं देता, और सदा अपनी सेवा, पूजा, भक्ति व गुण गान करवाने एवं उन्हें अपना सेवक बनाये रखने का ही प्रयत्न करता है तो ऐसा मूर्ख, दोषी, वा स्वार्थान्ध व्यक्ति सच्चा देव कदापि नहीं हो सकता।

सच्चा गुरु–

वह है जो विषयवासना से रहित होकर आरम्भ, परिग्रह का व मोह ममता का त्याग कर पापों से सर्वथा दूर रहता है, तथा ज्ञान, ध्यान व तप में ही मग्न रहते हुए सब जीवों और वस्तुओं से राग द्वेष छोड़ उनमें समता भाव धारण कर मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करता रहता है व उपदेश द्वारा दूसरे जीवों को भी उसका साधन कराता है। इसके विपरीत जो आत्म ज्ञान से शून्य, रात दिन विषय कषायों में मस्त रहा करता है, वह रागी, द्वेषी, आडम्बरी और ढोंगी साधु कदापि सच्चा गुरु नहीं हो सकता।

सच्चा शास्त्र–

वह है जो सच्चे देव का कहा हुआ हो, जिसमें स्याद्वाद

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की उदार नीति द्वारा वस्तु तत्व का यथार्थ विवेचन किया गया हो, जिसके सिद्धांतों या बातों का उनकी सत्यता के कारण कोई खंडन न कर सके, तथा जिसकी बातें प्रत्यक्ष या अनुमान आदि प्रमाणों से बाधित न हों, तथा जो पाप मार्ग से हटा कर सन्मार्ग पर लगाने वाला हो, और सब जीवों का समान रूप से हितकारक हो। और जिसमें इनमें से एक भी बात न पाई जावे तो समझो कि वह सच्चा शास्त्र नहीं है। इसी प्रकार—

सच्चा धर्म–

वह है, जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है कि जो संसार के दुखों से छुड़ा कर जीवों को सच्चा सुख और शांति प्रदान करे और आत्मा को कर्म कलंक से पवित्र कर परमात्मा बना देने की सामर्थ्य रखता हो। इसके विपरीत कोई धर्म वास्तविक धर्म नहीं कहला सकता।

इस प्रकार देव, गुरु, धर्म आदि को उपरोक्त लक्षणों की कसौटी पर कस कर उनका श्रद्धान करने से ही मनुष्य सम्यक्दृष्टि बन सकता है और उनके द्वारा बताये हुए आत्मा आदि तत्वों को ठीक २ कर आत्म कल्याण कर सकता है।

आत्म कल्याण के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को आत्मा के बन्धन व उससे मुक्त होने के कारणों को जानना तथा आत्मा आदि तत्वों को समझ कर उन पर अटल विश्वास करना भी परम आवश्यक है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तत्व क्या है ?

उस वास्तविक वस्तु के स्वरूप को तत्व कहते हैं जिसे जानकर हम अपना कल्याण कर सकें। मूल तत्व दो हैं १–जीव (आत्मा), २–अजीव (प्रकृति)। ज्ञान, दर्शन, आनन्द अथवा चेतनामय पदार्थ को आत्मा कहते हैं, जो प्रत्येक प्राणी में विद्यमान है, एवं सुख दुःख का अनुभव करता है। यह शरीर व इन्द्रियों से भिन्न "मैं हूँ" शब्दों के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के द्वारा स्पष्ट जाना जा सकता है। अजीव वह तत्व है जिसमें उपरोक्त चेतना या जानने देखने की शक्ति नहीं है [अजीव ५ प्रकार के हैं १–पुद्गल (**Matter**) २–धर्म (गति तत्व) ३–अधर्म (स्थैर्य तत्व) ४–आकाश ५–काल, ये पांचों अजीव और जीव ये ६ नित्य द्रव्य हैं जो कभी उत्पन्न व नष्ट नहीं होते—सदा से हैं व सदा तक रहेंगे]। संसारी जीव और अजीव के अन्तर्गत पुद्गल के परमाणु (कर्म) अनादि काल से सम्बन्धित हैं, और इसी कारण आत्मा संसार में जन्म मरणादि के दुखों को उठाता हुआ नवीन शरीरों को धारण कर नाना योनियों में भटक रहा है। जब शरीर, मन या वचन में हलन चलन, विचार व बोलने की क्रिया होती है तो शरीरादि से सम्बन्धित आत्मा में भी हलचल मच जाती है। आत्मा व शरीरादि की हलचल का आकाश में चारों ओर भरे हुए पुद्गल-परमाणुओं पर भी असर (प्रभाव) पड़ता है और आत्मा की हलचल जब राग, द्वेष, मोह, क्रोधादि विकारों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के साथ पैदा होती है तब आत्मा में एक प्रकार की विद्युत् जैसी आकर्षण शक्ति पैदा हो जाती है और उसके द्वारा वे पुद्गल के परमाणु चारों ओर से खिंच कर आत्मा की ओर आने व उससे बँधने लगते हैं। क्रोधादि भावों का उन परमाणुओं पर प्रभाव भी अवश्य पड़ता है और वे आत्मा को अपने २ तीव्र व मंद प्रभाव के द्वारा सुख दुखादि देने की शक्ति प्राप्त करके कालान्तर में सुख दुःख देने लगते हैं, इसीलिये उन्हें 'कर्म' इस नाम से कहा जाता है; क्योंकि उन्हें आत्मा ने अपने भावों द्वारा किया है व सुख दुखादि देने की शक्ति उनमें उसके भावों के असर से उत्पन्न हुई है। इस कर्म को ही भाग्य, विधाता, दैव, तक़दीर, स्रष्टा आदि अनेक नामों से कहा जाता है। जब आज का 'कर्म' कल या अपने समय आने पर सुख दुख आदि फल प्रदान करता है तब आत्मा में फिर नवीन भाव पैदा होते हैं और उनसे फिर नवीन कर्म बँधते हैं, इस प्रकार अनादि काल से कर्म और उनके फल का क्रम बीज वृक्ष की भांति चल रहा है। यदि आत्मा अपने पूर्व कर्म के फलों में राग द्वेषादि न कर, समता भाव धारण करले और मन वचन काय को, जिनके कि हलन चलन द्वारा ही कर्म-परमाणु आने लगते हैं, वश में कर ले तो नवीन कर्म-परमाणु नहीं आवेंगे और आत्मध्यान व तपश्चरणादि द्वारा प्राचीन बँधे हुए कर्मों को बिना फल दिये ही आत्मा से पृथक् करते २ जब परमाणुओं को सर्वथा पृथक् कर दिया जावेगा, तब आत्मा अपने शुद्ध चिदानन्दमय स्वभाव को प्राप्त होकर जीवन मुक्त और फिर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सम्पूर्ण शरीरादि रहित मुक्त हो जावेगी। जिस भांति खान का सोना अनादि से कीट कालिमा आदि मलों से युक्त हुआ करता है और बुद्धिमान उसे भट्टी आदि में गला कर या दूसरी शुद्ध करने की क्रियाओं द्वारा कीट, कालिमा आदि मलों से दूर कर शुद्ध स्वर्ण निकाल लेते हैं उसी तरह संसारी आत्माएँ, जो कि अनादि से कर्म मल से लिप्त हैं, आत्मध्यान आदि के द्वारा कर्म कलंक को धोकर व अपने सहज पवित्र स्वभाव को प्राप्त होकर पूर्ण सुखी बन जाती हैं।

आत्मा की ओर कर्म परमाणुओं का खिंच कर आना ही जीव और अजीव तत्व के अतिरिक्त तीसरा आश्रव तत्व है व आत्मा के कर्मों से बँध जाने का नाम चौथा बंध तत्व है तथा शुद्ध भावों व क्रियाओं द्वारा नवीन कर्मों को आने से रोक देना पांचवा संवर तत्व है और पहिले बँधे हुए कर्मों को धीरे २ अपने से दूर करने की क्रिया का नाम निर्जरा तत्व है और आत्मा का सम्पूर्ण कर्मों को दूर कर उनके बन्धन से मुक्त हो जाना ही सातवां मोक्ष तत्व है। यही आत्मा की असली अवस्था है और इसी अवस्था में सच्चा सुख प्राप्त होता है व इसी अवस्था को प्राप्त करना प्रत्येक सम्यक्दृष्टि का उद्देश्य रहना चाहिये।

सम्यग्दर्शन की विशेषताएं

तत्व के इस उपरोक्त रहस्य को समझने वाला प्रत्येक व्यक्ति, जो आत्म शुद्धि करने की ओर अपनी रुचि रखता है

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और तत्व के स्वरूप को भली भांति समझता है, इस बात पर कभी आशंका नहीं कर सकता कि आत्मा इन सब सांसारिक दुःखों से अवश्य छूट सकता है, तथा उसके छूटने का उपाय सम्यक्दर्शन ज्ञान व चारित्र है। इस श्रद्धा को निःशंकित अङ्ग कहते हैं।

सम्यक्दृष्टि पुरुष धर्म सेवन के बदले में इन्द्रिय जन्य सांसारिक-सुखाभासों की भी चाह नहीं कर सकता; क्योंकि धर्म का सेवन संसार के झंझटों से छूटने के लिये किया जाता है, न कि उनमें फँसने के लिये। जबकि संसार में वास्तविक आत्मिक सुख है ही नहीं, तब जो व्यक्ति परवस्तुओं के भोग में सुख समझ कर उनके पाने की, धर्म सेवन के बदले में, चेष्टा करता है, तो समझना चाहिये कि अभी वह भ्रम में पड़ा हुआ है और उसे यह ज्ञान ही नहीं हुआ कि संसार सब प्रकार दुःखमय व पररूप है। प्रत्येक व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिये कि आत्मा के सिवाय हमारा कुछ नहीं, और न सुख ही आत्मा के गुण के सिवाय कोई दूसरी वस्तु है जो इन्द्रियों के भोगों में प्राप्त हो जायगा। यदि संसार में या परवस्तुओं के भोग में सुख होता तो सांसारिक बड़ी से बड़ी विभूति को त्याग कर दुनियां के महान पुरुष जंगलों में जाकर तपश्चर्या करने का कष्ट न उठाते। ऐसी भावना को निःकांक्षित अङ्ग कहा गया है।

ऐसे ही सम्यक्दृष्टि यह समझता है कि संसार में जीवों की जो दुख व रोगमय या नीच ऊँच आदि अवस्थाएँ देखने में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आती हैं वह सब उनके किये हुए शुभाशुभ कर्मों के फल हैं। वास्तविक दृष्टि से तो सम्पूर्ण प्राणियों में मेरी ही तरह आत्मा मौजूद है, जो न रोगी है, न कोढ़ी है, न नीच वा ऊँच, न निर्धन, न धनवान। फिर यदि किसी मनुष्य या जीवधारी की पापकर्म के उदय से नीच व ख़राब हालत हो रही है तो इस कारण उससे घृणा करने की मूर्खता वह कैसे कर सकता है? इस प्रकार जब वह मामूली प्राणियों से भी घृणा नहीं करता तो फिर धर्मात्मा पुरुषों के रोगी शरीर या उनकी हीनावस्था से तो कदापि भी घृणा नहीं करेगा; प्रत्युत् यथायोग्य सेवा, सुश्रूषा करता हुआ, उनके रोगादि को दूर करने की ही चेष्टा करेगा, और ऐसा करना ही उसका कर्त्तव्य है। इसे ही निर्विचिकित्सा अङ्ग कहा गया है।

यह पहिले ही बताया जा चुका है कि समझदार व्यक्ति को अन्धों की भांति गुण दोषों की परीक्षा किये बिना हर एक देव को सच्चा देव व प्रत्येक साधुवेषी को सच्चागुरु अथवा धर्म के नाम पर होने वाली प्रत्येक क्रिया को धर्म न समझ लेना चाहिये; बल्कि उनके लक्षणों द्वारा सत्यासत्य का निर्णय कर, उन पर श्रद्धा व उनकी पूजा, उपासना आदि करना चाहिये। इसी तरह धर्म के नाम पर कभी २ कई लोकरूढ़ियां भी प्रचलित हो जाती हैं। उन पर विचार कर इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि जिसमें सम्यग्दर्शन व अपने व्रतादि में दोष न लगे। यदि किसी रूढ़ि के सेवन से हमारी धार्मिक श्रद्धा में दोष लगता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हो या हमारे आचरण में शिथिलता पैदा होने की संभावना हो, अथवा जिसमें धर्म का लेश भी नहीं है और उसके सेवन से पाप बढ़ता हो, या हमारा जीवन कष्टमय होता हो तो उसे तुरन्त ही त्याग देना चाहिये, यही अमूढ़दृष्टि अङ्ग है।

मनुष्य में अज्ञानता, प्रमाद और कमजोरी के कारण दोषों का होना साधारण बात है। अतः जो लोग धार्मिक रुचि रखते हैं और धर्मानुकूल आचरण करते हैं उनसे भी कभी उपर्युक्त कारणों से दोषों का बन जाना सम्भव है। जैसे कि स्वच्छ सफ़ेद वस्त्र पर कालिख का ज़रासा धब्बा या मैल तुरन्त मालूम होने लगता है और काले व मैले वस्त्र पर नहीं; वैसे ही धर्मात्मा कहलाने वाले पुरुषों और साधारण पुरुषों में से दोनों के द्वारा एक सा दोष होने पर भी साधारण पुरुष के दोषों पर लोगों का उतना ध्यान नहीं जाता जितना कि धर्मात्मा के दोषों पर। दूसरे सदाचारी या धर्मात्मा कहलाने वाले पुरुषों के दोष करने पर उन्हें बदनाम करने से उनकी ही बदनामी होती हो सो बात नहीं है; बल्कि अज्ञानी लोग उस धर्मात्मा के दोष को धर्म के साथ लपेटने की धृष्टता करने लगते हैं। यद्यपि किसी मनुष्य के पाप करने पर धर्म को बुरा कहना कदापि न्याय सङ्गत नहीं हो सकता; क्योंकि धर्म सदा ही पवित्र वस्तु है। यदि धर्मात्मा ग़ल्ती से या जान बूझकर कोई पाप करता है तो इसमें धर्म का क्या अपराध है? फिर भी "न धर्मो धार्मिकैर्विना" अर्थात् धर्मात्मा पुरुषों के बिना धर्म नहीं होता; इस उक्ति के अनुसार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

धर्मात्मा के साथ उसका धर्म भी अवश्य बदनाम हो जाता है। अतः धर्म की निन्दा को रोकने और गुणों की वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि हमें यदि किसी व्यक्ति में कोई दोष दिखाई दे तो उसे दूसरों से न कहते फिरें; बल्कि दोषी मनुष्य को ही समझा दें कि आपके ऐसा करने से आपके साथ धर्म भी बदनाम होता है, इससे आप ऐसा न करें। यदि वह समझदार होगा तो हमारे ऐसा करने से हमारा कृतज्ञ होगा और भविष्य में सचेत हो कर उस पाप से बचने की कोशिश करेगा; अन्यथा धर्म की निन्दा तो रुकेगी ही। दूसरे, हमें गुणों की वृद्धि का लक्ष्य रखते हुए सर्वदा अपनी दृष्टि गुणों की ओर ही रखनी चाहिये और दूसरों के दोषों पर दृष्टि न डालना चाहिये। यही उपगूहन अङ्ग है।

इसके अतिरिक्त यदि कोई मनुष्य अपनी किसी कमजोरी, मूर्खता, विपत्ति, और लालचवश या इन्द्रियों की क्षणिक वासनाओं को तृप्त करने के लिए सदाचार के पथ से भ्रष्ट होरहा हो या धर्म सेवन करते रहने पर भी अपनी आर्थिक दशा न सुधरने, विपत्तियों पर विपत्तियों के आने अथवा किसी मनोरथ के सिद्ध न होने से धर्म सेवन को ही व्यर्थ समझ, अपनी धार्मिक श्रद्धा से विमुख हो रहा हो तो उस समय तत्वज्ञाता पुरुषों का कर्त्तव्य है कि धर्म की रक्षार्थ जैसे भी हो सके, उसे सन्मार्ग से विचलित न होने दें और युक्ति से काम लेकर, उसे

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जिस तरह भी हो, धर्म मार्ग पर स्थिर रखकर उसकी व उसके धर्म की रक्षा करें। यह स्थितिकरण अङ्ग है।

जब कि मनुष्य को मनुष्यता के नाते, जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, मनुष्य ही नहीं, संसार के प्राणीमात्र को अपना बन्धु समझ उनसे प्रेम भाव रखना उसका प्रथम कर्त्तव्य है, तब धर्म सेवन करने वाले समस्त सहधर्मी भाइयों से विशुद्ध प्रेमभाव प्रकट करना तो और भी स्वाभाविक है। मुँह पर मित्रता पूर्ण चापलूसी से भरी हँस हँस कर बातें करना और पीछे से गले पर छुरियां चलाना या धोखा देना अथवा मन में रञ्च मात्र भी कपट रखना और वह भी सहधर्मी भाई के प्रति, एक सम्यग्दृष्टि पुरुष के लिए कदापि शोभा नहीं देता। वात्सल्य में बनावटी प्रेम के लिए कोई गुञ्जायश नहीं है। यदि कोई अपने सहधर्मी भाई के साथ प्रेमहीन, निष्ठुर या कपट पूर्ण व्यवहार करता है अथवा उनका यथायोग्य आदर, सत्कार सेवा, सुश्रूषा, विनय आदि करने के स्थान पर उनका ज़रा भी अपमान या तिरस्कार करता है तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति में धर्म का लेश भी नहीं है। यही वात्सल्य अङ्ग है।

इसी तरह संसार में छाये हुए अज्ञानरूपी अन्धकार के वश में हो कर और मोह, माया व मिथ्यात्व के कुचक्र में फँस कर जो प्राणी अपने जीवन को बर्बाद कर रहे हैं उन्हें धर्म का सच्चा स्वरूप समझाना और सन्मार्ग पर लगाने का प्रयत्न करना भी सम्यग्दृष्टि का आवश्यक कर्त्तव्य है। जब कि वीर धर्म

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्राणीमात्र का हितकारक होने से उनको सहारा देने की पूर्ण सामर्थ्य रखता है और वह प्राणीमात्र की सम्पत्ति है, तो न केवल दया ; बल्कि न्याय की दृष्टि से भी धर्म का पवित्र सन्देश प्राणीमात्र तक पहुँचाना प्रत्येक धर्मात्मा का प्रथम कर्त्तव्य है। जो मनुष्य अपने जाति, कुल, धन, बल या विद्वत्ता के घमण्ड से दूसरों को नीचा बनाये रखने के लिए उन्हें धर्म का पवित्र मार्ग बतलाने से इन्कार करते हैं या दूसरों को धर्म-कार्य करने से वञ्चित रखते हैं या बाधा डालते हैं वे उस मनुष्य का ही अहित नहीं ; बल्कि अपने धर्म का भी नाश कर डालते हैं, इस लिए जैनधर्म के उपर्युक्त प्राणीमात्र के हितचिन्तक, सुख शान्ति-वर्द्धक, पवित्र, सत्य और वैज्ञानिक सन्देश को दुनियां के प्राणीमात्र तक पहुँचाने की यथासम्भव कोशिश करना भी धर्म का एक अङ्ग है। इसे ही प्रभावना अङ्ग कहते हैं।

जो मनुष्य तत्व के स्वरूप को भली भांति समझता है वह चाहे नीच से नीच चाण्डाल भी क्यों न हो, देवता के समान पूज्य और वंदनीय है, और जो व्यक्ति आत्म तत्व के पवित्र हो सकने पर विश्वास नहीं करता, दुनियां के ऐश व भोगोपभोगों को ही सब कुछ समझता है, दीन दुखियों या धर्मात्मा पुरुषों की हीनावस्था देख कर उनसे घृणा करता है या जो मूढ़ताओं में फँसा रह कर कुरूढ़ि आदि को ही धर्म समझ उनके पालने में अपने को कृतकृत्य समझता है, अथवा रागी द्वेषी देवताओं को पूज कर उनसे अपना मतलब निका-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लने की ताक में रहता है या अपनी प्रशंसा के गीत गाता और दूसरों की निन्दा करता है, या दूसरे धर्मात्मा भाइयों को अपने ऐश्वर्य आदि के अभिमान में आ कर नीचा दिखाना चाहता है, या धर्म से डिगते हुए पुरुषों को सहारा देने के स्थान पर उनसे ऐसा व्यवहार करता है कि जिससे वे धर्म कर्म छोड़ कर पतित हो जांय, अथवा आपस में निष्कपट प्रेम के स्थान पर द्वेष और सेवा करने के स्थान पर स्वार्थसाधन की भावना रखता है, वह मनुष्य चाहे कितना ही कुलीन, धनी, मानी या ज्ञानी क्यों न हो, कभी भी सच्चा धर्मात्मा और सभ्य नहीं कहला सकता।

अब ज़रा सम्यक्चारित्र की नीव और विश्व प्रेम की जड़, अहिंसा, जो जैनधर्म का एक महान् अङ्ग है, तथा जिसके बिना कोई भी धर्म 'धर्म' नहीं कहला सकता, पर भी विचार कीजिये।

हिंसा और अहिंसा

जैनधर्म कहता है कि यदि तुम अपने व दूसरों के जीवन को सुखी बनाना चाहते हो तो तन, मन और वचन से अहिंसा का पालन करो। इस अहिंसा का पालन हिंसा को समझे बिना नहीं होसकता, जब कि हिंसा का त्याग ही अहिंसा है।

जिन भावों, इरादों, अथवा कार्यों से आत्मा का पतन होता है ऐसे राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भावों के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करने या इनके वश होकर दूसरे के प्राणों का घात करने वा दिल दुखाने को हिंसा कहते हैं। सारांश यह कि क्रोधादि विकारों के द्वारा अपनी शांति, आनन्द और निराकुलता को भङ्ग करना और दूसरों की शांति व सुख को ठेस पहुँचाना ही हिंसा, तथा दुर्भावों का त्याग कर आत्म शान्ति व आनन्द की ओर बढ़ते हुए उन्हें भङ्ग न करना एवं दूसरों की शान्ति व आनन्द को अपने द्वारा ठेस न पहुँचना ही अहिंसा है। यदि कोई सावधानी के साथ दूसरों की रक्षा व हित का ध्यान रखते हुए कुछ काम करता है और फिर भी उस कार्य के द्वारा किसी जीव के दिल को दुख पहुँच जाता है या उसकी जान ही चली जाती है तो उस मनुष्य को, जो कि यत्नाचार पूर्वक काम कर रहा है, हिंसा का दोष ज़रा भी नहीं लगता। इसी तरह जो मनुष्य प्रकट रूप में किसी को सताता या मारता नहीं है, किन्तु उसके भाव काम, क्रोध, राग, द्वेषादि से भरे रहते हैं तो समझना चाहिये कि वह पूरा २ हिंसक है।

उपरोक्त कथन से यह बात सहज में ही जानी जा सकती है कि जैन धर्म में किसी के बाहरी प्राणों के नष्ट होने या न होने मात्र पर हिंसा व अहिंसा निर्भर नहीं है; किन्तु दुर्भावों या दुर्भावना पूर्ण कार्यों में ही हिंसा और उनके अभाव में अहिंसा निहित है। यही जैनधर्म का हिंसा व अहिंसा सम्बन्धी संक्षिप्त रहस्य है। अब हिंसा के भेदों और अहिंसा पालन के व्यवहारिक रूप पर भी थोड़ा सा विचार किया जाता है—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हिंसा के भेद–

संसार में हिंसा चार प्रकार की होती है—(१) संकल्पी, (२) आरम्भी, (३) उद्योगी, (४) विरोधी।

(१) संकल्पी हिंसा वह है जो इरादे से की जाती है—जैसे किसी को जान बूझ कर सताना, देवी देवताओं को प्रसन्न करने अथवा अपना अभीष्ट सिद्ध करने के लिये जीवों को मार कर बलि चढ़ाना, मांस खाने की लोलुपता से प्राणियों का बध करना, द्वेषवश किसी पर आक्रमण करना, मनोरञ्जन के लिये शिकार खेलना, आदि। इन कार्यों को स्वयं न करके दूसरों से करवाना या किसी को करते हुए देख कर खुश होना भी संकल्पी हिंसा है।

(२) आरम्भी हिंसा वह है जो घर गृहस्थी के कार्यों में प्राणियों का घात हुआ करता है– जैसे चक्की पीसना, झाड़ू देना, मकान बनवाना, आग जलाना आदि कार्यों में सावधानी रखते हुए भी थोड़े बहुत जीव मर ही जाते हैं।

(३) उद्योगी हिंसा वह है जो खेती, व्यापार करने, कल-कारखाने चलाने आदि जीविका सम्बन्धी कार्यों में होती है।

(४) विरोधी हिंसा वह है जो दुष्टों और आततायियों से अपनी जान, माल, कुटुम्ब, आश्रित, देश और धर्म की रक्षा करने में होती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गृहस्थ और साधु की अहिंसा में अन्तर

जैन धर्मानुसार इन चारों प्रकार की हिंसा का पूर्ण रूप से त्याग गृहत्यागी साधु पुरुषों के लिये अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य है– बिना ऐसा किये कोई भी सन्त साधु नहीं कहला सकता। गृहत्यागी साधु पुरुष ही पूर्ण रूप से हिंसा का त्याग कर सकते हैं, जो कि संसार, शरीर व विषय भोगों से सर्वथा विरक्त रहते हुए अपने शरीर पर लँगोटी भी नहीं रखते और जिनकी चर्या सिवाय धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ का साधन करने के और कुछ नहीं है। साधु बनकर उसके अनुरूप पूर्ण पापों का त्याग कर महाव्रतों का पालन करना व तप तथा ध्यान के द्वारा आत्मशुद्धि करते हुए कर्मकलङ्क का समूल नाश करना प्रत्येक मनुष्य का प्रथम आदर्श होना चाहिये और इन व्रतों के पालन करने की कोशिश करना चाहिये।

अहिंसा की शक्ति और महिमा दोनों ही अनुपम व अचिन्त्य हैं। जब साधु पुरुष मन वचन कर्म से अहिंसक और वीतराग बनकर आत्मशुद्धि करने का प्रयत्न करते हैं; उस समय उनमें जो आत्मतेज प्रकट होता है उसके प्रभाव से बड़े २ अभिमानियों का मस्तक उनके चरणों में अपने आप झुक जाता है, जङ्गल के मृग और सिंहादि पशु पक्षी भी अपने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आपसी स्वाभाविक बैर विरोध का त्याग कर शान्ति के साथ उनके चरणों में जा बैठते हैं और उनकी दिव्य मूर्ति की ओर टकटकी लगाकर देखते रहते हैं। उनके दुश्मन, जो घर से अपने पूर्व बैर का बदला लेने के लिये नङ्गी तलवार लेकर सिर काटने उनके पास पहुँचते हैं, उनकी शान्त और वीतराग मुद्रा को देखकर काठ के पुतले की तरह हाथमें तलवार लिए खड़े रहजाते हैं और उनका हाथ नहीं उठता। अन्तमें उन्हें उनकी सर्वतो मुखी अहिंसाके सामने नत मस्तक होकर शतमुख से उनकी स्तुति करना पड़ती है। क्यों? इस लिए कि बहुगुण सम्पन्न वस्तु अल्प गुण वाली वस्तु पर अपना प्रभाव डाल कर उसे अपना जैसा बना लेती है, प्रकृति का यह अटल नियम है। जैसे समुद्र भर अमृत में दो चार बूँद विष भी अमृत रूप बन जाता है और उतने ही विष में थोड़ा सा अमृत विषमय बन जाता है; उसी प्रकार जिस महापुरुष की अन्तरात्मा में शुद्ध अहिंसा का अथाह समुद्र भरा हुआ है उसका प्रभाव यदि विद्वेषियों और विद्रोहियों की हिंसात्मक भावनाओं को कुंठित और हतप्रभ बनाकर यदि उन्हें भी अहिंसक और नम्र बनादे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? किन्तु संसार के सब मनुष्य घर बार छोड़ कर ऐसे साधु बन जायें और अहिंसा का पूर्ण रूप से पालन करने लगें यह सम्भव नहीं है; क्यों कि वैसा करना बड़ी धीरता, वीरता, गंभीरता और साहस का काम है। अतः जो लोग पूर्ण पापों और गृह आदि की ममता छोड़ने में असमर्थ हैं व गृह में रह कर ही अणुव्रत पालन करते हुए शान्ति

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पूर्वक धार्मिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं उन्हें चार प्रकार की हिंसा में से कम से कम संकल्पी हिंसा अर्थात् जान बूझ कर दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवों को सताने या मारने का त्याग अवश्य कर देना चाहिये। और चूंकि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति इन पांच स्थावर जीवों की गृहस्थ द्वारा संकल्पी हिंसा का त्याग होना कठिन है इस लिए आवश्यकता के बिना इनकी भी हिंसा न करना चाहिये और उनकी रक्षा का यथासंभव ध्यान रखना चाहिये।

ऊपर यह बताया जा चुका है कि घर के कार्यों तथा व्यापारादि के करने में भी त्रस हिंसा होती है; किन्तु उन कार्यों के करने में मनुष्य का सीधा उद्देश्य हिंसा करना नहीं, बल्कि उस कार्य को करना है। अतः वह हिंसा संकल्पी नहीं है और न उसका त्याग ही गृहस्थ घर में रह कर कर सकता है। चूंकि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों में भी गृहस्थ को मोक्ष पुरुषार्थ का लक्ष्य रखते हुए धर्म, अर्थ और काम इन तीन पुरुषार्थों का सेवन करना गृहस्थाश्रम की दृष्टि से उचित व आवश्यक है और इनके सेवन किये बिना उसका जीवन सुव्यवस्थित नहीं रह सकता, इस लिये भी वह त्रस जीवों की संकल्पी हिंसा के सिवाय शेष हिंसाओं का त्यागी नहीं बन सकता।

कोई मनुष्य घर में रहना चाहता है और गृहस्थी का भार भी लादे हुए है; किन्तु प्रतिदिन अपने सारे समय को दूसरों की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सेवा, स्वाध्याय, देवपूजा आदि धर्म-कार्यों में ही व्यतीत कर धन कमाने (अर्थ पुरुषार्थ) की ओर ध्यान नहीं देता, तो यह निश्चित है कि वह तथा उसके आश्रित अन्य कुटुम्बीजन एक न एक दिन संकट में फँस जांयगे और फिर निराकुल होकर वह धर्म कार्य भी न कर सकेगा। (हां, यदि घर में पर्याप्त धन हो तो अवश्य संतोष के साथ अपना सारा समय धर्म व आत्मोन्नति में लगा देना चाहिये, न कि तृष्णा के कुचक्र में फँसे रह कर असंतोष और अशान्तिपूर्वक अपने जीवन को हाय२ पूर्ण बनाकर बर्बाद करना चाहिये।) जो मनुष्य केवल धन कमाने में ही रात दिन एड़ी से चोटी तक पसीना बहाता रहता है और धर्म कर्म को भूल जाता व उस धन का भी उचित रूप से स्वयं भोग नहीं करता तथा न दूसरों की सहायता व परोपकार करता है वह भोजन की परोसी हुई थाली को ठुकरा कर लंघन करने वाले मनुष्य के समान ही मूर्खता करता है, और केवल क्लेश का पात्र होता है। आखिर वह धन कमाता किस लिए है ? ऐसे ही जो मनुष्य केवल धन कमाने और खाने, पीने, मौज उड़ाने में ही मस्त होकर आत्मोन्नति के लिए धर्म साधन करना, व मोक्ष पुरुषार्थ की ओर लक्ष्य रखना नहीं चाहता या भ्रमवश उन्हें भूल जाता है तो निःसंदेह वह पशु से भी बदतर अपने जीवन को मनुष्यत्व व कर्त्तव्यहीन बनाकर बर्बाद करता हुआ कौए को उड़ाने के लिये क़ीमती रत्न को फेंक देने की मूर्खता करता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए मनुष्य का धर्म, अर्थ, काम इन तीन पुरुषार्थों का ठीक २ सेवन करते रहने तथा मोक्ष पुरुषार्थ की ओर अपना लक्ष्य रखने में ही कल्याण है और साथ ही यह भी निश्चित है कि अर्थ पुरुषार्थ (धनकमाना)व काम पुरुषार्थ (इन्द्रियों के न्यायोचित भोग भोगना) इन दोनों में आरम्भी व उद्यमी हिंसा भी उससे छूट नहीं सकती; किन्तु फिर भी आजीविका के जिन कार्यों में और भोगोपभोगों की जिन सामग्रियों के भोग में हिंसा अधिक होती हो उनका त्याग भी उसे यथा संभव अवश्य करने का प्रयत्न करना चाहिये और धन कमाते व भोगों का भोग करते समय सदा न्याय तथा दूसरों के उचित अधिकारों व हितों की रक्षा को भी कदापि न भूल जाना चाहिये ; अन्यथा वे अर्थ पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ न कहला कर संकल्पी हिंसा का स्थान ले लेंगे, जो कि अपने और दूसरों के सुख शान्ति को नष्ट करने में छुरी का काम करती है ।

गृहस्थ और विरोधी हिंसा

गृही जीवन में मनुष्य को कभी २ ऐसी परिस्थिति का सामना भी करना पड़ता है जबकि उसके धनादि के अतिरिक्त देश, धर्म, कुटुम्ब, जाति व अपना भी अस्तित्व ख़तरे में पड़ जाता है। क्योंकि संसार में सब लोगों के लिये धर्म का ठीक २ उपदेश मिलना आसान नहीं है, और यदि मिल भी जाय तो हर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

एक का धर्मानुकूल चलने लगना कठिन है—चाहे जितना सुन्दर, जोशीला, तर्कपूर्ण, सत्य और कल्याणकारक उपदेश दीजिये; सैकड़ों मनचलों, कामांधों, दुष्टों, अभिमानियों और दुनियां के मौज शौक को ही सब कुछ समझने वालों के कानों और हृदयों पर जूं तक नहीं रेंगती, और वे दूसरों को सताने, बर्बाद करने, बहिन बेटियों की बेइज्ज़ती करने, धर्म और धर्मस्थानों पर हमला कर उन्हें नष्ट भ्रष्ट करने, धन माल हड़पने, स्वतन्त्रता का अपहरण कर अन्याय व अत्याचार करने आदि पर तुले बैठे रहते हैं। ऐसे समय जबकि कोई आततायी किसी सद्गृहस्थ के जान माल आदि के अपहरण करने की कोशिश करता है या उसके धर्म व धर्मस्थानों को नष्ट भ्रष्ट करके अपनी धर्मान्धता की पराकाष्ठा दिखाना चाहता है जैनधर्म कहता है कि उस समय गृहस्थ को फ़ौरन युक्ति, बल, ख़ज़ाना और तलवार आदि साधनों से अपने धर्म, देश, समाज, कुटुम्ब व अपनी और अपने आश्रितों की रक्षा करनी ही चाहिये। सम्भव है कि इस समय के संघर्ष में आततायी को चोट लग जाय या उसकी जान चली जाय; किन्तु आत्मरक्षा की भावना से लड़ने वाले गृहस्थ को संकल्पी हिंसा का दोष नहीं लगता; इसके अतिरिक्त आततायी को शिक्षा देने और उसका भविष्य सुधारने तथा अन्य लोगों को पाप से भयभीत करने के लिये उसे न्यायानुकूल यथायोग्य राज्य-दंड भी दिलाना चाहिये ताकि फिर किसी को वैसा कार्य करने का साहस न हो सके।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वे पुरुष वीर कहलाते हैं जो किसी आततायी के द्वारा सताये जाने पर आत्मरक्षा करने में पूर्ण समर्थ होते हैं और उसे वश कर उस पर विजय प्राप्त कर लेते है; किन्तु जो प्रतीकार करने में पूर्ण समर्थ होते हुए भी दुश्मन की दुष्टता और मूर्खता का बदला लेने की अपेक्षा उसे हृदय से क्षमा कर देते हैं वे वास्तव में महावीर और सच्चे अहिंसक हैं। अपराधी को हृदय से क्षमा कर देना और उसका तनिक भी ख़याल न लाना कितना कठिन और वीरता का कार्य है, इसे साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकते। ऐसी नासमझी से जो लोग उक्त प्रकार के महावीर पुरुषों को 'कायर' कहने का साहस करते हैं वे वीरता और धर्म का ही अपमान करते हैं, जिसे प्रत्येक समझदार भलीभांति आसानी से समझ सकता है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को क्षमा धारण कर महावीरता दिखाना चाहिये; किंतु यदि वह ऐसा न कर सके तब कायरता छोड़ कर आत्म रक्षा कर वीरता तो दिखानी ही चाहिए।

कायर वे हैं जो बलवान शत्रु का प्रतीकार करने में स्वयं असमर्थ होने पर या सामर्थ्य होने पर भी साहस के अभाव में डर के मारे मुँह छिपा कर बैठ जाते हैं और मन ही मन तो उसे कोसते व द्वेष करते रहते हैं, किन्तु ऊपरसे दिखावटी 'क्षमा क्षमा' का राग अलापते रहते हैं। यह कायरता है और इसमें व हिंसा में नाम मात्र का ही अन्तर है। यह कायरता उस विरोधी हिंसा से कहीं अधिक पापपूर्ण व निंद्य है, जिसका कि ऊपर वर्णन किया गया है और जो गृहस्थ के लिये क्षम्य है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किन्तु गृहस्थाश्रम को त्याग कर सच्चे हृदय से साधु धर्म पालन करने वाले पुरुषों को, यह हम पहिले ही बता चुके हैं कि उन्हें सब तरह की हिंसा का त्याग करना ही चाहिये। यदि किसी साधु पर कोई दुष्ट आक्रमण करे, बांधे, मारे या प्राण तक लेने का षड़यन्त्र रचे तो भी उसे शत्रु के प्रति रञ्चमात्र बैर, द्वेष या क्रोध आदि का भाव न करते हुए प्रतीकार करने में समर्थ होते हुए भी उसे हृदय से क्षमा करना चाहिये, यही पूर्ण व सच्ची अहिंसा है; जिसकी महिमा का वर्णन लेखनी से होना असम्भव है। उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि गृहस्थ और साधु दोनों ही अहिंसा का अपने २ पद के अनुसार एक देश व पूर्ण रूप से पालन करते हुए धर्मानुकूल भली भांति शान्ति पूर्वक जीवन बिता सकते हैं। गृहस्थ व साधु की अहिंसा में अन्तर तो प्रकट ही है। जो लोग बिना समझे जैनधर्म की अहिंसा को अव्यवहारिक कहा करते हैं, आशा है उनका भ्रम उक्त कथन से दूर हो जायेगा।

जैनधर्म के इतिहास और कथा ग्रन्थों में जैन गृहस्थों और साधुओं की सैकड़ों वीरतापूर्ण अहिंसा पालन सम्बन्धी गौरव-गाथाएँ भरी पड़ी हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार उन जैन गृहस्थों व साधुओं ने अपने २ पद के अनुरूप अहिंसा धर्म का शानदार पालन करते हुए वीरता, धीरता, और गम्भीरता का परिचय दिया था। बहुत प्राचीन कथाओं को छोड़ कर इतिहास के उज्वल रत्न, मौर्य साम्राज्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शिरोमणि सम्राट् चन्द्रगुप्त, धर्मवीर सम्राट् एलखारवेल, वीर शिरोमणि चामुण्ड राय, और प्रतापी भामाशाह जैसे नररत्नों को ही ले लीजिये कि जिन्हों ने गृहस्थ के योग्य अहिंसा धर्म का पालन करते हुए भी आततायियों से अपने देश, धर्म, समाज आदि की रक्षा करने में कभी भी कायरता से काम नहीं लिया। जो लोग अहिंसा को भारत की पराधीनता का कारण कहते हैं उन्हें चाहिये कि वे ज़रा भारत के पराधीनता सम्बन्धी इतिहास के अवलोकन का कष्ट स्वीकार करें जिससे उन्हें मालूम हो जायेगा कि जिस समय भारत पराधीन बना है उस समय ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी से ले कर पन्द्रहवीं शताब्दी तक भारतीय नरेशों ने लगातार विदेशी आक्रमणकारियों का वीरता के साथ मुक़ाबिला किया और उन्हें पराजित करते हुए देश की पूर्ण रूप से रक्षा की; किन्तु अन्त में राजाओं की आपसी फूट, स्वार्थपरता, व बिखरी शक्ति के कारण ही भारत पराधीन बना। अस्तु, (सच तो यह है कि यदि गृहस्थ राज्यादि कार्यों को करते हुए अथवा गृहस्थी की ज़िम्मेदारी का भार सम्भालते हुए विरोधी हिंसा का बिल्कुल त्याग कर दें तो दुनियां में अंधेर मच जाये—आततायी लोग लूट, मार, हत्या, व्यभिचार, बलात्कार, अत्याचार आदि करने में निःशङ्क हो कमर कस कर जुट जायें और किसी भी गृहस्थ का धर्म, जान, माल, देश आदि ख़तरे से ख़ाली न रहे। इस लिये गृहस्थों से अहिंसा का एक देश पालन ही हो सकता है और वही पालन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करने की उनसे प्रेरणा की गई है। [यदि कोई गृहस्थ गृहस्थाश्रम के कार्यों से उदास होकर अपना भार किसी योग्य उत्तराधिकारी को सौंप कर घर में रहता हुआ भी आरम्भी, उद्योगी व विरोधी आदि हिंसाओं को त्यागना चाहे तो वह ऐसा भी कर सकता है और उसके लिये यह जरूरी नहीं है कि वह गृहस्थी में रहकर सब प्रकार की हिंसाएँ करे ही; बल्कि जितना २ इन झंझटों का त्याग किया जायगा और आत्म शुद्धि की ओर प्रवृत्ति की जायगी उतने ही अंशों में धर्म और सांसारिक फँसाव सम्बन्धी कार्यों को आदर्श मानते हुए आत्मपतन करना ही अधर्म होगा। इस दृष्टि से वह जितना अशुभ-त्याग करेगा, उतना ही अच्छा।]

जैन गृहस्थों के सिवाय जैन साधुओं ने भी जो अपने योग्य पूर्णरूप से अहिंसा का पालन करने के लिये हँसते २ अपने प्राणों तक का बलिदान किया है और वीरतापूर्ण कष्ट सहिष्णुता एवं धर्म प्रेम का परिचय दिया है वह भी वास्तव में शत मुख से प्रशंसनीय और अभिवंदनीय है। एक बार किसी साम्प्रदायिक धर्मान्ध राजा ने ५०० जैन साधुओं को उनके निरपराध रहते हुए भी जिन्दा कोल्हू में पिलवा दिया था किन्तु उनमें से एक ने भी भागने या उफ् करने की कोशिश नहीं की। ऐसे ही राजा बलि ने हस्तिनापुर में ७०० जैन साधुओं के संघ को धर्म द्वेषवश नर-मेध यज्ञ रच कर जिन्दा जला डालने का दुष्प्रयत्न किया था; किन्तु साधुगण तनिक भी ध्यान से विचलित नहीं हुए। ध्यानस्थ सुकुमाल मुनि के अङ्ग प्रत्यंगों को एक स्यालिनी ३ दिन तक अपने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बच्चों सहित धोरे २ खाती रही और वे सुमेरुसे भी अधिक स्थिर रह कर उस भीषण कष्ट को सहते रहे; किन्तु स्यालिनी के प्रति रंच मात्र भी क्रोध या क्षोभ का भाव प्रकट नहीं किया और अन्त में प्राण तक गँवा दिये। कहां तक लिखा जाय, ऐसी २ हजारों कथाएँ सूचित करती हैं कि अहिंसा वीरों का धर्म है जिसमें कायरता का लेशमात्र भी स्थान नहीं है, और जैन-धर्मानुसार प्रत्येक गृहस्थ, राजा महाराजा से लेकर ग़रीब से ग़रीब तक व प्रत्येक साधु अपने २ पद व योग्यता एवं शक्ति के अनुसार पालन करते हुए संसार में शांति के साथ जीवन व्यतीत करते हुए आत्मा को पवित्र कर पूर्ण स्वतन्त्र बन सकता है। अहिंसा का पालन वीर पुरुष ही कर सकते तथा अहिंसा वीरों का धर्म है। यह बात सिद्ध करने के लिये हमें दूर जाने की आवश्यकता नहीं है; स्वयं जैनधर्म के सर्वेसर्वा २४ तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर पर्यन्त सब ही वीर शिरोमणि राज्य-वंशोत्पन्न क्षत्रिय राजकुमार थे और इनमें से ३ तो चक्रवर्ती सम्राट् के पद से भूषित थे, जिन्होंने ६ खण्ड पृथ्वी की रक्षा का भार सँभाल रक्खा था। इन सब ही महापुरुषों ने राज्य का यथा-योग्य भार सँभाला और किसी २ ने आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करते हुए व राज्य भार को बिना सँभाले ही कुमार वय में कठोर तपश्चर्या कर परमात्म पद प्राप्त किया एवं दूसरों को सन्मार्ग प्रदर्शन किया था। जिससे स्पष्ट है कि अहिंसा वीरों का ही धर्म है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अहिंसा की रक्षा–

करने के लिए भोजनादि की शुद्धि भी अत्यन्त आवश्यक है। रसना इन्द्रिय की लोलुपता में जीवों को मार कर या उन्हें जिन्दा ही खा जाना, अथवा स्वयं मरे हुए जीवों का कलेवर खाना, अन्डे चूस जाना, शराब या अन्य प्रमाद बढ़ाने या काम विकार को उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का खाना पीना, तथा मक्खियों का वमन रूप शहद जैसे अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करना अथवा अन्य ऐसे पदार्थों का सेवन करना जिनसे जीवों का घात हुए बिना नहीं रहता, अहिंसक व्यक्ति के कदापि योग्य नहीं हो सकता और न इनके प्रथम त्याग किये बिना वह अहिंसा धर्म के पथ पर ही चल सकता है। इसी प्रकार प्राणियों की रक्षार्थ पानी छान कर पीना, रात्रि को भोजन न करना, गले सड़े फल व मर्यादा से रहित अन्य भोज्य पदार्थ, जिनमें कीटाणु पैदा हो चुके हों, न खाना भी अहिंसा की दृष्टि से आवश्यक है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इन पदार्थों का सेवन न करना लाभदायक है, जिसका वर्णन करना यहां अप्रासांगिक जान पड़ता है। अस्तु,

अहिंसा की रक्षा और उसका ठीक २ निर्वाह–

करने के लिए ही ४ अन्य पापों का भी त्याग करना चाहिये; क्योंकि वे चार पाप भी आत्मा के गुणों का घात कर उसे पतन की ओर ले जाते हैं और दूसरों को भी कष्ट पहुँचाते हैं; अतः वे भी हिंसा के अङ्ग हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वे चार पाप हैं— झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह। झूठ असत्य वचनों को ही नहीं कहते हैं; बल्कि जो दूसरों को पीड़ाकारी हों, निंद्य हों, पापमय हों या स्वार्थवश अन्यथा कहे गये हों, अथवा अपने और दूसरों के गुणों का नाश करने वाले हों, वे सब झूठ वचन ही हैं। ऐसे वचनों से क्योंकि संसार में अशान्ति उत्पन्न होती है, दूसरों को कष्ट पहुँचता है, और बोलने वाले को उस समय मन में भयभीत होना व आगामी उसका दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। इसलिये यह सब वचन हिंसा और पाप हैं। धर्म तो सत्य ही हो सकता है।

वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो संसार में मानव-जगत का सम्पूर्ण व्यवहार प्रायः वचनों के द्वारा चला करता है। वचन के द्वारा ही एक मनुष्य दूसरे को बुलाता, काम करने को कहता, उपदेश देता, व देनलेन का व्यवहार करता है। यहां तक कि अपने हृदय के सम्पूर्ण विचारों को प्रकट करने का एक मात्र उपाय भी वचन ही है। यदि मानव जगत से वचन की प्रवृत्ति नष्ट हो जाय तो मनुष्य और पशु के व्यवहार में सम्भवतः कुछ भी अन्तर न रहे। वचन में बड़ी २ शक्तियां निहित हैं– एक वचन ऐसा होता है जो दुःखी, अशान्त और व्याकुल मनुष्यों के अन्तःकरण में अमृत घोल देता, तथा मृत्यु के मुख में पड़े हुए लोगों को जीवन प्रदान करता है। इसके विपरीत एक वचन ऐसा होता है जो हृदय में तीर सा चुभ जाता है और तलवार, छुरी व बन्दूक की गोली के आघात से भी अधिक पीड़ा व

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सन्ताप का कारण बन कर स्वस्थ मनुष्य को भी मृत्यु के घाट उतार देता है। वचनों की सत्यता के बल पर ही दुनियां के संपूर्ण कारोबार ठीक२ चल सकते हैं और मनुष्य एक दूसरे पर विश्वास कर सकते हैं। इस समय जो दुनियां में कुछ सोचने और कुछ कहने, वचन देकर पूरा न करने, व विश्वासघात करने, एवं दूसरों की निन्दा व आत्म प्रशंसा के राग अलापने की प्रवृत्ति चल रही है वह सब हिंसा का ही एक अङ्ग है जिसे वाचनिक हिंसा कहना उपयुक्त होगा। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह वचन का ठीक २ व्यवहार करे, परनिन्दा एवं पीड़ाकारी वचन कदापि न कहे और न ऐसे वचन बोले जो दूसरों को हानि पहुँचावें, अप्रिय या असत्य हों, अथवा पापाचार या विश्वास-घात से भरे हों। यह याद रखना चाहिये कि जब तक अन्तः-करण पवित्र न होगा तब तक वचनों में यथार्थता और मधुरता नहीं आ सकती, और इनके आये बिना संसार में न तो व्यवहार ही ठीक चल सकता है और न शान्ति ही क़ायम हो सकती है; क्योंकि मनुष्य का पारस्परिक प्रत्येक कार्य और व्यवहार वचन के द्वारा प्रारम्भ होता है। आज संसार में मनुष्य प्रायः झूठे और बेईमान बन गये हैं। वे पैसे २ के लिये झूठ बोलना पाप नहीं समझते। मनुष्य आज इतना पतित हो गया है कि वह न्याया-लयों में भी जाकर शान के साथ झूठी शपथ खाने में नहीं लजाता! दो झूठे गवाह तैयार किये और मुकद्दमे में जीत का डङ्का बजा! इससे न्याय का गला तो घुट ही रहा है साथ ही दुनियां में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भी अशान्ति फैल रही है और पारस्परिक विश्वास तो प्रायः समाप्त ही हो गया है, इस भांति जब कि संसार की सामूहिक शान्ति भी असत्य भङ्ग कर डालता है और संसार के कार्य तक असत्य के द्वारा ठीक नहीं चल सकते तो आत्मकल्याण और आत्मोन्नति होना तो नितान्त ही असम्भव है। बल्कि आत्मा असद्वचनों के द्वारा पतित ही होता है और यह आत्मपतन ही आत्मघात है जो हिंसा का ही दूसरा नाम है।

चोरी में दूसरों की धनादि वस्तुओं को चुराने व हड़प जाने की बुरी नीयत रहा करती है। इससे आत्मा के पतन के साथ जिसकी चीज़ चुराई जाती है उसे भी कष्ट पहुँचाता है; इसलिये यह भी हिंसा का एक अङ्ग है।

धन सम्पत्ति को संसार में मनुष्य का ग्यारहवां प्राण कहा जाता है। इसे प्राप्त करने में मनुष्य दिन रात परिश्रम करते हुए शारीरिक और मानसिक अनेक प्रकार के कष्ट सहन करते हैं, और अपने कमाये हुए धन को प्राणों से भी प्यारा समझते हुए उसे सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं। एक पैसा भी व्यर्थ खो जाय या छोटी से छोटी सुई जैसी वस्तु का पता न चले तो उसके प्राण व्याकुल हो जाते हैं और उनकी आत्मा दुःख का अनुभव करती है। फिर भला इससे अधिक कीमती वस्तुओं को बिना उसकी आज्ञा के चुरा लेने में उसे कितना दुःख न होगा? अपनी किसी वस्तु के दूसरों द्वारा चुरा लिये जाने पर जो कष्ट हमें होता है उससे दूसरे की चीज़ चुराने पर उसके कष्ट का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अनुभव आसानी से हो सकता है। इसलिए दूसरों को कष्टप्रद होने के कारण चोरी में परहिंसा भी पूर्ण रूप से होती है।

इस दोष के अतिरिक्त मनुष्य की सचाई की कसौटी और ईमानदारी का प्रमाण आर्थिक क्षेत्र में ही मिलता है। जो मनुष्य १ पैसा तो दूर, दूसरे की एक कौड़ी भी अपहरण नहीं करता, दूसरों की कीमती से कीमती चीजों पर मोहित नहीं होता और न बेईमानी से दूसरे के धनादिक को ही हड़पने की इच्छा रखता है वह सचमुच हिंसा के उपर्युक्त दोषों से लिप्त न होकर अपने चरित्र बल से आत्मा को उन्नत कर सकता है; किन्तु चोर और बेईमान जो निरन्तर दूसरों का माल हड़पने की ताक में लगा रहता है वह आत्मा को पतन की ओर ले जाता हुआ आत्महिंसा और परहिंसा के दोषों से मुक्त नहीं हो सकता और न ऐसे नीचतापूर्ण कार्यों से संसार में ही शान्ति स्थापित हो सकती है। अतः चोरी को हिंसा का अङ्ग जानकर त्याग करना ही चाहिये। इसके अतिरिक्त नैतिकदृष्टि से भी किसी के कमाये हुए धन को अपहरण करने का किसी को कोई अधिकार नहीं है।

दूसरों की स्त्रियों या मां, बहिन, बेटियों पर नीयत बद बना कर उनसे रमना, दुर्भावना या रमने की इच्छा करना ही कुशील है, आत्मा को मोहित करके पतन की ओर लेजाने व उसके चारित्रगुण का समूल नाश करने के कारण प्रकट है कि वह भी हिंसा का ही एक भेद है। इस लिये मनुष्य का यह कर्त्तव्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है कि वह उपर्युक्त हिंसा के कारण कुशील का भी अवश्य त्याग करे।

मोहवश प्राणियों में जो विषय वासना जागृत होती है उसकी पूर्ति स्त्री पुरुष परस्पर में सम्भोग कर किया करते हैं। यह पहिले ही बताया जा चुका है कि परवस्तु के भोग में सच्चा सुख नहीं मिल सकता; इसी लिए मैथुन कर्म से भी सच्चा सुख नहीं मिल सकता; फिर भी विषयांध मनुष्य उसमें सुख की कल्पना करते हैं। क्षणिक किन्तु निःसार सुखाभास के लिए विषयांध होकर स्त्री सम्भोग करने के अनन्तर उनकी क्या दशा होती है और वे कितना सुख अनुभव करते हैं, इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तःकरण से पूछ सकता है; अतः आत्मा को विषय सेवन द्वारा सुखी बनाने के लिये मैथुन सेवन करना और ब्रह्मचर्य का न पालना न केवल मूर्खता है बल्कि अपने पतन का भी कारण है, और इसीलिए हिंसा है। अतः वे पुरुष और महिलाएँ धन्य हैं जो इन्द्रियों पर क़ाबू रखते हुए पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं; किन्तु विषय वासना को पूर्णरूप से जीतना प्रशंसा का कार्य होते हुए भी आसान काम नहीं। अतः जो पुरुष पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य का पालन करने में असमर्थ हैं उन्हें एक पत्नीव्रत और स्त्रियों को एक पतिव्रत का पालन कर विषय वासना को सीमित बनाना और विवाहित स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से काम-सेवन का त्याग करना ही चाहिए और अपनी स्त्री के साथ भी सन्तानोत्पत्ति के उद्देश्य के सिवाय विषय भोग

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करने की विशेष लालसा नहीं रखनी चाहिए। एक पत्नीव्रत (ब्रह्मचर्य अणुव्रत) का पालन न केवल धार्मिक, बल्कि नैतिक दृष्टि से भी आवश्यक है और सामाजिक शान्ति एवं आत्म शान्ति के लिए तो अत्यन्त ही आवश्यक है। मनुष्य जिन कारणों से मनुष्य कहला सकता है उनमें केवल सुन्दर वस्त्रों से नंगे शरीर को ढक लेना तथा मकान बना लेना और आपस में बातचीत कर लेना ही मनुष्य कहलाने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकता, बल्कि मनुष्य में मनुष्यता लाती है उसकी सचरित्रता और विवेक । इन दोनों गुणों के अभाव में मनुष्य देहधारी को खुशी से पशु कहने में कोई हानि नहीं। आज संसार की दशा बड़ी विचित्र है। मनुष्य में मनुष्यता की अपेक्षा पशुता का अधिक बोलबाला है। मानव समाजका अधिकांश भाग अनाचार और व्यभिचार के नरककुण्ड में पड़ा हुआ सानन्द गधे पर चढ़कर बैकुण्ठ देखने की कोशिश कर रहा है। सामने से किसी स्त्री के निकलने पर ललचाई हुई दृष्टि से सभ्य कहलाने वाले व्यक्तियों का घूरना एवं स्त्रियों का निरन्तर पर-पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित करने की कोशिश करते रहना और नित नये फ़ैशन बदलने में विलासिनी स्त्रियों को भी मात करने का उपक्रम रचना पतन के गह्वर की ओर क़दम बढ़ाना नहीं तो और क्या है ? आख़िर वह कौनसा सद्विचार है जिसके वश होकर पुरुष और स्त्रियां उपरोक्त कार्यों में प्रवृत्त होते हैं ? यह ढोंग और ख़तरनाक सभ्यता मानव समाज को पतित और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बर्बाद करने के लिए ख़तरे की घंटी है, जिसे सुनकर समय रहते दुनियां को तुरन्त सचेत हो जाना चाहिए।

यदि मनुष्य, मनुष्य ही बना रहना चाहता है और अपना जीवन शान्ति पूर्वक बिताने के साथ २ संसार में भी शान्ति क़ायम रखना चाहता है तो इस पाशविक वृत्ति का उसे त्याग करना ही चाहिये और यह याद रखना चाहिये कि स्वच्छन्दता एवं उच्छृङ्खलतापूर्वक प्रवृत्ति करना हिंसाशून्य कार्य नहीं कहला सकता और न इससे संस्कृति तथा सभ्यता का विकास व आत्मोन्नति ही हो सकती। व्यभिचार में प्रवृत्ति कर स्वयं पतित होना आत्महिंसा और परस्त्री को पतित करना परहिंसा स्पष्ट है।

अहिंसा की दृष्टि से संयम का पालन करना, अपनी इन्द्रियों व मन को वश में रखना, तथा हर प्राणी की रक्षा व उसके हित का ध्यान रखना भी परम आवश्यक है। असंयमी पुरुषों की इच्छा कभी भी तृप्त नहीं होने पाती। आत्मसंयम को न पालन करने वाला मनुष्य निरंतर ही असंतुष्ट रहा करता है और वह विषयों की पूर्त्ति के लिए न केवल स्वयं मारा मारा फिरता है, बल्कि दूसरों को सताने, उनके अधिकार और मुँह में से रोटी तक छीनने जैसे नीचता पूर्ण कार्यों के करने पर भी तुल जाता है, जिसमें हिंसा और अधर्म का होना अनिवार्य है, और जहां यह है वहां सुख व शांति की कल्पना? निरर्थक!

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसलिए अहिंसक का यह कर्तव्य है कि वह इन्द्रिय संयम व प्राणिसंयम का यथाशक्ति पालन करे और उतनी ही चीज़ों का भोग करे जितनी जीवन के लिए आवश्यक हैं व न्यायपूर्वक उपार्जन की गई हैं दूसरों को सता कर नहीं।

आत्मसंयम का पालन न करने तथा इन्द्रियों के भोगोपभोगों में आनन्द समझ कर उनके वश होकर आत्मा से भिन्न वस्तुओं में मग्न होकर धनादि वस्तुओं में जो ममता का भाव तथा उनके संग्रह करने की लालसा और तृष्णा का भाव पैदा होता है वही परिग्रह नामक पांचवां पाप है, जो कि संसार में भीषण अशान्ति, विषमता, और संघर्ष का कारण होने से हिंसा का ही एक अङ्ग है। धन, दौलत, ज़मीन, राज्य, ऐश्वर्य आदि भौतिक पदार्थों की चाह के कुचक्र में फँसा हुआ और यह सोचता हुआ मनुष्य कि मैं ही सम्पूर्ण सम्पत्तियों का स्वामी बन जाऊँ, न जाने कितने और क्या २ पापों के करने में जुट जाता है। यह वह पाप है जो मनुष्य को न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, यश-अपयश, कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विचारों से शून्य बनाकर रात दिन हाय २ व मोह माया के जाल में फँसा कर आत्मा की शान्ति को समूल नष्ट कर डालता है, और यही आत्महिंसा है तथा मनचाहा धन व साम्राज्यादि का स्वामी बनने के लिए जो दूसरों के साथ लूट, खसोट, बेईमानी, विश्वासघात, छलकपट, अत्याचार और आक्रमण आदि करने पर विवश होना पड़ता है, वह परहिंसा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

साम्राज्य और धन दौलत की आसुरी लालसा ने आज तक न जाने कितने मनुष्यों का जीवन बर्बाद कर डाला और उनके द्वारा न जाने कितने निर्दोष तथा शांत प्राणियोंके धन, जन व सर्वस्व को नष्ट भ्रष्ट करवा डाला ! साम्राज्यशाही का आजकल जो दुनियां के अन्दर नग्न तांडव हो रहा है और तोपों, बन्दूकों, बमों, मशीनगनों, टेङ्कों आदि के ज़ोर से साम्राज्यवादी जिस निर्दयता और पाशविकता का हृदयहीन प्रदर्शन करते हुए असंख्य निरीह जनता पर राक्षसों की भांति टूट कर निर्मम हत्यायें करके अपनी आसुरी वासनाओं को तृप्त करने की कोशिश कर रहे हैं; तथा पहिले भी करते रहे हैं, वह सब परिग्रह नामक महापाप का ही दुष्परिणाम नहीं तो और क्या है ? इसी प्रकार एक काफ़ी धनवान व्यक्ति, जो असंख्य ग़रीबों पर अत्याचार करता हुआ इतराता और उससे भी अधिक धन संग्रह करने की लालसा में अत्यन्त कठोर और हृदयहीन बन जाता है, वह सब भी इस परिग्रह रूप शैतान की करामात का ही निर्लज्ज प्रदर्शन है।

रूस के उद्धारक मौशिये लेनिन ने राजा और प्रजा, धनवान और निर्धन का भेद मिटाने के लिए तथा सांसारिक विषमता, अशान्ति और संघर्षों को दूर करने के लिए जो 'साम्य-वाद' नामक सुन्दर योजना का आविष्कार किया था ; और दुनियां की धन सम्पत्ति व अनाज आदि की पैदायश पर सब का समान अधिकार स्वीकार करके सब को स्वतन्त्र रूप से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आवश्यकतानुसार भोग करवाने का स्वप्न देखा था उसको भी 'परिग्रह' नामक सर्वभक्षी राक्षस ने नष्ट कर डाला।

इसलिए जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, जैनधर्म कहता है कि मनुष्यो ! जिस धनदौलत और राज्य की तृष्णा के वश होकर तुम स्वार्थान्ध होकर दूसरों पर अत्याचारादि असंख्य पापों के करने में जुटे हुए हो और उन्हें प्राप्त कर जो तुम कल्पित सुखों को पाने के स्वप्न देख रहे हो, वह सब तुम्हारा कोरा भ्रम और पागलपन के सिवाय और कुछ नहीं है। अपनी आत्मा से भिन्न अर्थात् परवस्तु, जिस धन या राज्य आदि की चाह मात्र से आत्मा में अशान्ति और आकुलता घटने के स्थान पर बढ़ने लगती है तथा जिसकी तृप्ति करने के लिए दूसरों के अधिकारों एवं सुखों की निर्मम हत्या करनी पड़ती है, उसकी पूर्त्ति करके भी आज तक कोई भी तो सुखी न बन सका। बल्कि दूसरे मनुष्यों की भावनाओं में परिग्रही मनुष्य की सर्वभक्षी नियत ने ईर्षा और द्वेष को जन्म देकर अशान्ति ही उत्पन्न की है जिसका परिणाम परिग्रही मनुष्य का पतन और अन्त में विनाश हुआ है। सुख हमेशा ही सन्तोषी पुरुषों को प्राप्त हुआ है और होगा।

अतः प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह इस परिग्रह रूप महापाप के जाल से जितनी शीघ्रता के साथ निकल सकता हो निकल जाये। और यदि वह पूर्णरूप से इसका त्याग करने में असमर्थ हो तो कम से कम अपनी आवश्यकता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के अनुसार धन दौलत का परिमाण करके गृहस्थी में सन्तोष के साथ जीवन व्यतीत करे तथा परिमाण व आवश्यकता से अधिक धन के हो जाने पर दूसरे दीन, हीन मनुष्यों की सहायता कर उनके दुःखों को दूर करने की कोशिश करे या अन्य सार्वजनिक कार्यों में ख़र्च करे, तथा यह ख़याल रक्खे कि आत्मा से धन क़ीमती वस्तु नहीं है और न इससे सच्चा सुख ही मिल सकता है। फिर यदि दूसरों का मेरे कमाये हुए धन द्वारा भला होता है, उनके भौतिक दुःखों का अन्त होता है, तो क्यों न ऐसा करके मैं दूसरों के कष्टों को दूर करूँ, जब कि वे भी मेरी ही तरह दुःखों से छूटना और सुखी बनना चाहते हैं?

इस प्रकार पवित्र भावना रखने वाला मनुष्य मनुष्यत्व को पाकर सच्चा मनुष्य बन जायेगा और अपने साथ दूसरों को सुखी बनाने में तथा संसार में शान्ति स्थापित करने में परम सहायक सिद्ध होगा। तथास्तु!

यही आदर्श अहिंसा सच्चा धर्म है और इसे ही जैन धर्म ने अपने मूल सिद्धान्त के रूप में अपना कर संसार के प्राणीमात्र के लिए सच्चे सुख और शान्ति के पवित्र मार्ग का सन्देश दिया है। जो लोग उपरोक्त वीरतापूर्ण अहिंसा को कायरता और बुज़दिली कह कर उसका मख़ौल उड़ाना चाहते हैं, उनका निःसन्देह आपस में कुत्तों की तरह लड़ २ कर अपना और अपने साथ दूसरों का जीवन बर्बाद करने के सिवाय और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कोई उद्देश्य व आदर्श नहीं हो सकता, जो संसार को भीषण अशान्ति की ज्वाला में भस्म किये बिना नहीं रहेगा। क्या दुनियां अशान्ति की भीषण ज्वाला में जल २ कर नष्ट होने के लिए तैयार है? यदि नहीं तो प्राणीमात्र को अपना बन्धु समझते हुए अहिंसा का हृदय से पालन कर एक नवीन विश्व का निर्माण करो, जिसमें सब लोग एक कुटुम्ब की तरह हिलमिल कर प्रेम के साथ जीवन व्यतीत करते हुए पूर्ण स्वतन्त्रता और सुख के मार्ग पर अग्रसर हों, इसी में प्राणीमात्र का हित और संसार का भला है।

यह है जैन धर्म और उसका पवित्र संक्षिप्त उद्देश्य, जो मनुष्य ही नहीं, प्राणीमात्र को सच्चा सुख प्रदान करने के वैज्ञानिक पवित्र आदर्श को लेकर न जाने कितने युगों से भगवान् महावीर जैसी विभूतियां द्वारा समय २ पर फूले और फले हैं, तथा आज भी विश्व कल्याण की उच्चतम भावना के साथ इस वर्तमान भीषण अशान्ति की गोद में खेलते हुए दुःखी संसार में स्थायी शान्ति स्थापित कर प्राणीमात्र को सुख प्रदान करने की पूर्ण और अचूक शक्ति रखते हैं।

क्या दुनियां शान्त हृदय से निष्पक्ष बन कर विवेक के साथ इसके उक्त पवित्र संदेश को सुनने के लिए तैयार है? यदि वह सुख व शान्ति को दिल से चाहती है तो हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि उसे आज या कल, उक्त संदेश को सुनने और उस पर अमल करने के लिये तैयार होना ही पड़ेगा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन दर्शन तथा अन्य दर्शनों के दृष्टिकोण

में

मौलिक अन्तर

वस्तु तत्व की यथार्थता की ठीक २ शोध या खोज को दर्शन कहते हैं तथा जगत् और उसके पदार्थों की विवेचना करना ही दर्शन का कार्य है। विश्व के समस्त दर्शनों से जैनदर्शन के तत्व-विचार करने की प्रणाली सर्वथा भिन्न, मौलिक और महत्व पूर्ण है। संसार के सम्पूर्ण दार्शनिक जहां वस्तुओं और जगत के सम्बन्ध में सर्वथा एक दृष्टि से ही विचार करना चाहते हैं और अपने उस एक दृष्टिकोण के द्वारा देखे या जाने गये वस्तु के एक अंश को ही पूर्ण वस्तु समझना व समझाना चाहते हैं एवं अपने से भिन्न दृष्टिकोण द्वारा देखे गये वस्तु तत्व को जो कि दूसरी दृष्टि से यथार्थ है, मिथ्या कह कर वस्तु स्वरूप की पूर्णता का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ज्ञान प्राप्त करने से मुँह मोड़ कर हठवाद का आश्रय ले पक्षपात के गहन गह्वर की ओर जाने का प्रयत्न करते हैं, वहीं जैनदर्शन उदारतापूर्वक वस्तु के सम्बन्ध में प्रत्येक दृष्टि से उसके हर एक गुण और उसकी अवस्था का ठीक २ विचार कर वस्तु स्वरूप का वैज्ञानिक रीति से पूर्ण और यथार्थ ज्ञान कराने की कोशिश करता है। यही नहीं, जबकि दो दर्शन एक ही वस्तु के सम्बन्ध में उसके विभिन्न दृष्टियों द्वारा देखे गये भिन्न २ गुणों का आश्रय लेकर परस्पर विसंवाद करते हुए एक दूसरे को झूठा तक कहने का साहस करने लगते हैं– जैसे बुद्ध दर्शन जब केवल वस्तुओं की अवस्था पर ही दृष्टि रख कर उनके बदलते रहने के कारण वस्तु को सर्वथा अनित्य (क्षणिक) मानता और नित्यवादी सांख्य को झूठा बताता है, तथा सांख्यदर्शन जबकि वस्तु के केवल गुणों पर विचार करता हुआ क्योंकि वे कभी नष्ट नहीं होते, अतः वस्तु को सर्वथा कूटस्थ नित्य सिद्ध करने का प्रयत्न करता है एवं उनकी बदलने वाली हालतों पर तनिक भी विचार न कर इस ओर दृष्टि को संकुचित बना कर अनित्यवादी बुद्ध-दर्शन को झूठा साबित करने का प्रयत्न करने लगता है; तब जैन-दर्शन कहता है कि मित्रो! तुम दोनों यथार्थवाद को छोड़कर अपने संकुचित दृष्टिकोण और पक्षपात के कारण व्यर्थ मात्सर्य न करो और न एक दूसरे को भला-बुरा कहो, वस्तु सचमुच पर्याय (हालत) की दृष्टि से अनित्य (क्षणिक) और द्रव्य व गुणों की दृष्टि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से नित्य (स्थिर) है। वस्तु का स्वभाव अनेकान्तात्मक (अनेक धर्म या स्वभाव वाला) है। एक ही वस्तु में नित्य गुण व अनित्य पर्यायें अविरोध से रहती हैं तथा गुणों और अनन्त पर्यायों के समुदाय का नाम ही द्रव्य है। एक ही द्रव्य अपने सम्पूर्ण गुणों के साथ अनन्त पर्यायें (हालतें) को धारण करता रहता है और इसलिए कथंचित् नित्य व कथंचित् अनित्य है— गुण की दृष्टि से नित्य और पर्याय की दृष्टि से अनित्य ।

इस भांति जैन दर्शन अपने उदार दृष्टिकोण द्वारा वस्तु तत्व का निष्पक्ष और यथार्थ विवेचन करता और वस्तु को अनन्त गुण पर्यायात्मक समझता है तथा उनका निर्बाध कथन करते हुए मनुष्य के ज्ञान को पूर्णता की ओर ले जाता हुआ उसकी ज्ञान पिपासा को शान्त करने का प्रयत्न करता है। यह प्रत्येक बुद्धिमान स्वीकार करेगा कि अधूरी, संकुचित एवं पक्षपातपूर्ण दृष्टि द्वारा किया गया कोई भी ज्ञान पूर्णज्ञान या यथार्थज्ञान कहलाने का दावा नहीं कर सकता और न उस ज्ञान के द्वारा कोई अपने को पूर्णज्ञानी या सर्वज्ञ ही बना सकता; क्योंकि विश्व में विद्यमान अनन्त पदार्थ और उनके स्वभाव व कार्यक्रम स्पष्टतः विभिन्न और बहुसंख्यक हैं, उन्हें एक ही दृष्टिकोण के अन्तर्गत पूर्णतः ले आना अल्पज्ञ पुरुषों द्वारा असम्भव है, यह एक मोटी बात है। अतः विश्व के सम्पूर्ण दर्शनों ने अपने एक ही दृष्टिकोण द्वारा जहां वस्तु के सम्बन्ध में विचार कर अन्य दृष्टिकोणों के द्वारा प्रतीत होने वाले वस्तु के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अन्य अंशों के सम्बन्ध में आंखें मीचने का प्रयत्न किया और उनके सम्बन्ध में विचार करने से इन्कार कर दिया या अपनी संकुचित दृष्टि से उसे मिथ्या या भ्रमरूप बताया और अपने अंशात्मक ज्ञान को ही पूर्ण और सत्य कहा, वहीं जैन दर्शन ने तत्वज्ञान के सम्बन्ध में उदारता से काम लेते हुए वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखने और उसकी खूबियों को हर पहलू से विचार करने के लिये प्रेरित करते हुए निष्पक्ष हो कर वस्तु कां पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराने को अग्रसर किया। यही जैन दर्शन की महती मौलिकता है जो उसे पूर्ण दर्शन कहने के लिये प्रेरित करती हुई सम्प्रदायवाद से उत्पन्न संघर्षों को दूर कर उन्हें एकता के सूत्र में पिरोने और सब ही के विचारों का आदर करती हुई (यदि वह निष्पक्ष हों तो उन्हें सत्य घोषित कर) एक सुन्दर आदर्श उपस्थित करती है, एवं विश्व को सत्य के पवित्र मार्ग की ओर अग्रसर करती है। इसी उदार और निष्पक्ष दृष्टिकोण द्वारा वस्तु तत्व को प्रकट करने की प्रणाली को जैनदर्शन में "स्याद्वाद" के नाम से प्रकट किया गया है जो कि वस्तु के सम्बन्ध में किसी एक गुण को प्रकट करने की इच्छा होने पर उसे प्रकट करते समय मुख्य व शेष गुणों को गौण कर देता है और कहता है कि वस्तु का स्वरूप विवक्षित गुण की अपेक्षा ऐसा भी है। वह यह नहीं कहता कि ऐसा ही है। इससे यह स्पष्ट हैकि एक ही वस्तु किसी दृष्टि से भेद रूप और किसी से अभेद रूप, एक रूप अनेक रूप, नित्य-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रूप, अनित्य रूप, सद्रूप असद्रूप, आदि कही और मानी जा सकती है, वास्तव में वह है भी ऐसी ही।

प्रश्न—एक ही वस्तु को सत् और असत् मानने में स्पष्टतया विरोध आता है—जो सत् है वही असत् कैसे ?

उत्तर—यह विरोध ठीक होता, यदि जिस दृष्टि से सत् कहा गया है उसीसे असत् भी कहा जाता; किन्तु ऐसा नहीं है। वस्तु को स्वरूप की दृष्टि से सत् और पर रूप से असत् कहने में कोई बाधा नहीं आती और वस्तु के सम्बन्ध में अनुभव भी ऐसा ही होता है—मिसाल के तौर पर जीव को ही ले लीजिये, जीव अपने गुणों और अवस्थाओं की दृष्टि से सत् रूप है और पर-अजीव के गुणादि की अपेक्षा असत् रूप है अर्थात् जीव, जीव है, अजीव नहीं। यदि जीव को जीवत्व की दृष्टि से ही असत् माना या कहा जाता तो अवश्य विरोध आता; किन्तु ऐसा नहीं है। सोना, सोना है, चांदी नहीं इस भांति एक ही सोने में स्वरूप का अस्तित्व और पररूप का नास्तित्व दोनों बातें मौजूद हैं। यदि ऐसा न माना जायगा तो वस्तु के स्वरूप की न तो व्यवस्था बन सकेगी और न उसका ठीक २ ज्ञान ही हो सकेगा। उदाहरणार्थ यदि सोना सब दृष्टियों से सत् रूप ही माना जावे और पररूप से असत् न माना जाये तो वह चांदी भी हुआ, तांबा भी हुआ और सब कुछ हुआ; क्योंकि सब दृष्टियों से सद्रूपता ही स्वीकार की गई है, न कि स्वरूप से सद्-रूपता और पररूप से असद्रूपता। अतः अनेक दृष्टिकोणों की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अपेक्षा अनेक धर्म, वस्तु में जो कि वास्तविक रूप से विद्यमान हैं, अनेक या एक समय में भिन्न २ रूप में किसी एक की मुख्यता और शेष की गौणता से कहे और माने जाने चाहियें। यही स्याद्वाद प्रणाली है जो वस्तु के वास्तविक ज्ञान के होने में सहायक और तत्वज्ञान को पूर्णता की ओर ले जाने वाली है। एक दृष्टि से जानी गई वस्तु और उसका ज्ञान अधूरा व आंशिक है जब तक उस पर पूर्ण रूप से विचार न किया जाये; किन्तु विश्व के दार्शनिक अपने एकांगिक वस्तु विज्ञान को ही पूर्ण कहना और समझाना चाहते हैं एवं अपने उस एक ही दृष्टिकोण को पूर्ण सत्य तथा अन्यों को असत्य कह कर हठ और पक्षपात का आश्रय लेकर, संकुचित व अनुदार बन कर अपना भिन्न सम्प्रदाय खड़ा कर आपस में द्वेष और मात्सर्य करने लगते हैं; जब कि जैन दर्शन सब दर्शनों का समन्वय कर उन्हें पक्षपात छोड़ कर वस्तु को अनेक धर्मात्मक स्वीकार करने और उनके अधूरे ज्ञान को पूर्णता की ओर लेजाने की पक्षपातहीन उदारता-पूर्ण घोषणा कर दुनियां के लिए युक्तिपूर्ण मौलिक और वास्तविक शिक्षा प्रदान करता है। जैन दर्शन का यही दृष्टिकोण पर्याप्त रूप से सार्वभौम धर्म के निर्माण में बुन्याद का कार्य कर सकता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैनधर्म-सिद्धान्त

चराचर पदार्थों से भरा हुआ यह जगत अनादि अनन्त है। न तो यह कभी किसी के द्वारा बनाया गया था और न कभी इसका अन्त ही होगा। इसमें परमात्मा और आत्मा इस भांति चेतन तत्व दो विभागों में बँटा हुआ है—संसार में जो आत्माएँ जन्म मरण करती हुई शारीरिक और मानसिक सभी प्रकार के कष्टों को उठाया करतीं हैं, उनमें चाहे देवों का राजा इन्द्र हो या मनुष्यों का इन्द्र चक्रवर्ती, सब ही किसी न किसी प्रकार दुःख और आकुलता का अनुभव करते हैं और इस भांति सांसारिक सब ही प्राणी दुःखी व परतन्त्र हैं। सांसारिक प्राणियों को, जो कि भ्रमवश अचेतन या अपने से भिन्न चेतन पदार्थों के साथ भोगोपभोग कर सुखी बनने के स्वप्न देखा करते हैं, कर्म-बन्धन लगा हुआ है, और इस कर्म बन्धन के आधीन ये सब दुःख उठाया करते हैं। कर्म एक अचेतन द्रव्य के परमाणु हैं, जिसे पुद्गल या **Matter** कहा जाता है। इन अचेतन परमाणुओं में आत्माके विकार, भाव, रागद्वेषादि के द्वारा आत्मा के साथ बँधकर सांसारिक दुःख सुखादि देने की शक्ति हो जाती है और अचेतन मद्य (शराब), संखिया आदि चीज़ों की भांति समय समय पर फल देते रहते हैं। इस भांति आत्माएँ अपने २ भावों और कर्मों के द्वारा स्वयं ही सुख दुःख का अनुभव करती रहती हैं; इसमें किसी दूसरी शक्ति का कोई हाथ नहीं। दूसरे शब्दों में प्रत्येक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आत्मा अपने भाग्य का स्वयं ही निर्माण करती है और उसका फल भी उसे स्वयं (कर्मों के परिपाक काल आने पर) मिलता रहता है। ईश्वर या परमात्मा इस सम्बन्ध में कुछ नहीं करता।

जो आत्मा मोह व राग द्वेष का त्याग कर नवीन कर्मों का बंध नहीं करती एवं पुराने कर्मों को तपश्चरण और आत्म-ध्यान के द्वारा आत्मा से पृथक् कर देती है, वही परमात्मा बन जाती है; फिर उसको जन्म, मरण, रोग, शोक आदि व्याधियां नहीं सतातीं और न उसमें फिर अज्ञानता आदि दोष ही रहने पाते। उसकी सम्पूर्ण इच्छाओं का, जो कि मोह से पैदा होती हैं; अभाव हो जाता है और वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, कृतकृत्य, समदर्शी या वीतराग हो जाता है, कुछ दिनों तक, जब तक कि आयु कर्म शेष रहता है, वह सशरीर या साकार परमात्मा के रूप में भूमंडल पर भूली भटकी संसारी आत्माओं को धर्म का सत्य मार्ग बताता है और फिर शरीर त्याग कर निराकार परमात्मा बन जाता है। साकार व निराकार दोनों अवस्थाओं में परमात्मा अपने असली स्वरूप में मग्न रहता है। आत्मा का असली स्वरूप अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शक्तिमय है। चाहें तो इन गुणों के समुदाय को भी आत्मा कह सकते हैं। गुण (ज्ञानदर्शन आदि) और गुणी (आत्मा) में नाम मात्र का भेद है जो कि गुण गुणी आदि का कथन कर दूसरों को आत्मा का लक्षण समझाने के लिये करना पड़ता है। वास्तव में गुण को छोड़ कर गुणी और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

गुणी को छोड़ कर गुण कोई वस्तु नहीं। अतः आत्मा के जो ज्ञान, दर्शन, सुख आदि स्वाभाविक गुण या स्वयं आत्मा ही संसार में विकारमय अवस्था को प्राप्त हो रहा था, वह विकार के कारण राग, द्वेष, मोह आदि भाव कर्मों और पुद्गल परमाणु रूप द्रव्य कर्मों के दूर हो जाने पर अपने स्वभाव को प्राप्त हो जाता है, और उसी अवस्था को परमात्मा कहते हैं। यह परमात्मा न तो किसी से राग करता है न द्वेष, अपने अनन्त आनन्द में मग्न होकर अनन्त ज्ञानादि गुणों का स्वतन्त्रतापूर्वक अनन्त काल तक उपभोग करता रहता है, और फिर कभी संसार के जन्म मरण रूप संकट में नहीं फँसता। जिस भांति बीज वृक्ष की सन्तान अनादि होते हुए भी बीज के एक बार भी अग्नि में भून लेने पर फिर उससे कोई वृक्ष पैदा नहीं होता या धान (छिलका सहित चावल) से पौदा और पौदे से धान अनादि काल से उत्पन्न होते रहने पर भी चावल से उसका छिलका एक बार भी कूट कर भिन्न कर देने से शुद्ध चावल के द्वारा फिर पौदा उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार आत्मा से अनादि काल से लगा हुआ कर्म मल जब आत्मध्यान से पृथक् कर दिया जाता है तब फिर कभी भी उसके जन्ममरण रूप सन्तान में पड़ कर संसार में परिभ्रमण करने की संभावना नहीं रहती। आत्मा के परमात्मा बन जाने पर फिर कभी संसार में पड़ने की संभावना तभी हो सकती थी जबकि उसमें कभी रागद्वेष, विकार उत्पन्न होते और उससे नवीन कर्म बन्ध होकर उसका फल भुगतना पड़ता; किन्तु मुक्त जीवों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में, जो कि आत्मा के अनन्त आनन्द का उपभोग कर रहे हैं, और राग द्वेष करने से जन्म मरण रूप संसार में फँस कर घोर संकटों का सामना करना पड़ता है, इस बात को भली भांति जानते हैं, अकारण राग द्वेष पैदा हरगिज़ नहीं हो सकता। और न वे जान बूझ कर मूर्खों की भांति राग द्वेष कर सकते हैं।

संसारमें जो जीवों की सुख दुःखमय अवस्थाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं वे केवल भ्रममात्र नहीं हैं; प्रत्युत् वे अवस्थाएँ वास्तविक हैं; किन्तु स्वाभाविक नहीं, वैभाविक हैं अर्थात् विकार से उत्पन्न होती हैं। यदि ये अवस्थाएँ अवास्तविक होतीं तो इनका गगन कुसुम (आकाश के फूल) के समान अनुभव भी न होता, और सब जीव परमात्म अवस्थामय होते; किन्तु ऐसा नहीं है। आत्माएँ अपने पुरुषार्थ और तपश्चरण द्वारा कर्मकलंक नष्ट करके परमात्मा बनती हैं। जब तक सांसारिक आत्माएँ परमात्मा नहीं बनतीं और परमात्मा होकर सुखी होने की इच्छा रखती हैं तब तक उन्हें परमात्मा को आदर्श मानकर उनके गुणों की पूजा करना, स्तवन करना व श्रद्धाभक्ति प्रकट करना चाहिये और उसके गुणों का चिंतवन कर अपनी आत्मा में उन गुणों के अनुभव करने का प्रयत्न करना चाहिये। परमात्मा राग द्वेष रहित है, इसलिए वह किसी के स्तुति करने पर प्रसन्न और गालियां देने पर अप्रसन्न नहीं होता। केवल अपने भावों की शुद्धि, भ्रम-निवारण, आत्मानुभव, अपने आदर्श पर श्रद्धा और भक्तिभाव

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का प्रकटीकरण करने के लिये परमात्मा की उपासना और पूजा करना उचित है। जब साकार परमात्मा के साक्षात् दर्शन न मिलें तो उन्हीं की भांति उनकी मूर्ति (प्रतिमा) को प्रतिष्ठित कर, जिसपर वीतरागता झलक रही हो, परमात्मा की उपासना करना चाहिये; क्योंकि उनकी मूर्ति के दर्शन से भी सिवाय उपदेश के सम्पूर्ण लाभ लिए जा सकते हैं और अपने भावों में शान्ति एवं वीतरागता की प्राप्ति के अतिरिक्त सम्यग्दर्शन (आत्मानुभव) आदि की प्राप्ति तक हो सकती है।

संसार में आत्माएँ अनन्तानन्त हैं। यदि उनकी अवस्थाओं पर विचार किया जाय तो वे मनुष्य, देव, नरक, तिर्यंच (पशु पक्षी) चार प्रकार की हैं और इनमें भी अनेक भेद हैं। यहां चौरासी लाख योनियों द्वारा जीव जन्म मरण करते रहते हैं। सम्पूर्ण योनियों में मनुष्य योनि ही श्रेष्ठ योनि है; क्योंकि इसको पाकर आत्मा अपने भले बुरे का विचार कर सकता है, साथ ही तपश्चरण कर मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है। मनुष्य होकर भी जो अपने जीवन को खाने पीने मौज उड़ाने में ही गँवा देता है और आत्मा की भलाई बुराई पर तनिक भी विचार नहीं करता, न अपनी उन्नति के लिये मानवोचित कर्म और धर्म का पालन करता है, वह मनुष्य नहीं पशु है; बल्कि उससे भी बुरा है। मनुष्य को चाहिये कि वह धर्म के स्वरूप को और अपनी आत्मा को भली भांति समझकर निम्न लिखित प्रारम्भिक नियमों का अवश्य पालन करे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१—जिन महान् आत्माओं ने अपने को कर्म व संसार के बन्धन से मुक्त कर लिया है और दूसरों को मुक्ति का सच्चा मार्ग दिखाया है तथा जो वीतराग व सर्वज्ञ हैं उनकी आत्म-जागृति के लिए उपासना (पूजा) करना और उनके गुणों का चिंतवन करना।

२—सांसारिक विषय भोगों की चाह से रहित एवं ज्ञान, ध्यान, तप में अनुरक्त मुक्ति के प्रयत्न में लगे हुए सच्चे तपस्वियों का आदर व उनकी सङ्गति करना व उनके जैसे बनने की भावना रखना।

३—सन्मार्ग पर लेजाने वाले पूर्वोक्त गुणसम्पन्न सच्चे शास्त्रों का स्वाध्याय करना और आत्मज्ञान की वृद्धि करना।

४—अपने चञ्चल मन और इन्द्रियों पर काबू रखना और इनके दास बनकर विषय भोगों को आदर्श न समझना तथा प्रत्येक प्राणी की रक्षा का हर एक कार्य करते समय ध्यान रखना और अपने द्वारा किसी को कष्ट न पहुँचने देने की सदैव भावना रखना व प्रयत्न करना।

५—प्रति दिन प्रातः सायं एकांत में बैठ कर आत्मचिंतन करना और परमात्मा का ध्यान करते हुए वैसे बनने के लिए भावना बनाना एवं अपने अच्छे, बुरे कार्यों की समालोचना करना।

६—दूसरों का जिस प्रकार भी हो, भला करना, अपने स्वार्थ का त्याग कर भोजन, वस्त्र, औषधि, आदि चीजें बिना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बदले की इच्छा के, पात्रानुसार वितरण करना, दूसरों को दुःख व सङ्कट से निकालना व ज्ञान-वृद्धि के साधन जुटाना।

इन कर्त्तव्यों का पालन करने के अतिरिक्त कुछ कार्य ऐसे हैं जो आत्मोन्नति में बाधक हैं व संसार में और अपनी आत्मा में भी अशान्ति उत्पन्न कर पतन की ओर ले जाने वाले हैं। अतः उनसे शक्ति भर बचने का प्रयत्न करना और उनके पास न जाने की प्रतिज्ञा करनी भी आवश्यक है; क्योंकि इन दुर्व्यसनों का एक बार भी चसका लग जाने पर फिर उनका छूटना कठिन हो जाता है जैसे—जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, शिकार खेलना, वेश्या और परस्त्री सेवन करना, चोरी करना आदि ऐसे ही कार्य हैं, तथा झूठ बोलना, परनिंदा करना, घमंड करना, छल कपट या विश्वासघात करना, अन्याय करना, अत्याचार करना इन कार्यों को तो भूल कर भी न करना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति अपने २ भाग्य का स्वयं ही निर्माता है, इसमें ईश्वर या अन्य किसी दैवी शक्ति का कोई हाथ नहीं। अतः अपना सुधार हमें अपने आप ही करना पड़ेगा, इस बात का निरन्तर ध्यान रखते हुए हर एक मनुष्य को प्रति दिन और प्रति क्षण आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिये कि मैं कोई ऐसा विचार या कार्य तो नहीं कर रहा हूँ जो मुझे पतन की ओर लेजाने वाला है। अपनी आत्मा और चरित्र की रक्षा मनुष्य अपने आप ही भले प्रकार कर सकता है। इसके अतिरिक्त

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दूसरों के ऐबों पर दृष्टि न रख कर गुणों पर दृष्टि रखना और कुसङ्गति से यथाशक्ति बचने की कोशिश करना भी मनुष्य का कर्त्तव्य होना चाहिये। यह भी न भूलना चाहिये कि संसार में शान्ति रखने की ज़िम्मेदारी, संसार के असंख्य मनुष्यों में से एक मनुष्य होने के कारण, प्रत्येक व्यक्ति पर लदी हुई है और इस ज़िम्मेदारी को पूरा करना भी प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है जिसे वह निम्नलिखित विश्वशान्ति के मूल मन्त्र की भावना द्वारा पूरा कर सकता है और उसे ऐसा करना चाहिये :—

सत्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थ-भावं विपरीत-वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव !

भगवन् ! संसार के सम्पूर्ण प्राणियों से मित्रता, गुणी पुरुषों को देख कर प्रसन्नता, दुःखी जीवों पर दयार्द्रता और अकारण द्वेष करने वालों या दुष्ट जीवों पर माध्यस्थता अर्थात् न राग, न द्वेष, मेरी आत्मा निरन्तर धारण करे। ऐसी पवित्र भावना रखने और तदनुकूल आचरण करने से ही संसार में विश्वशान्ति का विशाल साम्राज्य स्थापित हो सकता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति का मनुष्यता के नाते यह परम कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह जीवन की उपरोक्त चर्या और भावनाओं को अपने जीवन में अवश्य उतारे।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैनधर्म और ईश्वरवाद

यद्यपि जैनधर्म ने परमात्मतत्व, अध्यात्मवाद, परलोकवाद, आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर उनकी जो वैज्ञानिक और विशद रूप में व्याख्या की है वह संसार के सम्पूर्ण दर्शनों में बेजोड़ है और इसीलिये यह एक आस्तिक दर्शन है; तौ भी कुछ लोग इस पर "नास्तिकता" का आरोप लगाते रहते हैं और न जाने कब से लगाते आ रहे हैं। इसका मुख्य कारण वे जैनदर्शन का अकर्तृत्व वाद अर्थात् ईश्वर को जगतकर्त्ता न मानना ही बतलाते हैं। इसलिए जैनदर्शन, ईश्वर को सृष्टि-कर्त्ता क्यों नहीं मानता, इस सम्बन्ध में पाठकों की जानकारी के लिए यहां पर तर्क व प्रमाण संगत थोड़े से विचार उपस्थित किये जाते हैं। जैनदर्शन कहता है कि ईश्वर को जगत्कर्त्ता मानने में सिवाय कल्पना के कोई भी प्रमाण नहीं है कि जिस के बल पर उसे सृष्टिकर्त्ता माना जा सके, उल्टे पदार्थों के स्वभाव और उनकी परम्पराएँ यह सिद्ध करती हैं कि यह सब कुछ अनादि अनन्त है, अलबत्ता पदार्थों की अवस्थाओं में कभी समान और कभी असमान परिवर्त्तन होते रहते हैं; किन्तु यह कभी भी सम्भव नहीं हो सकता कि सब पदार्थ कभी समूल नष्ट हो जायें या कभी बिना अपने उपादान कारण के पैदा हो जायें। यदि ईश्वर को ही सबका उपादान स्वीकार किया जायेगा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तो सब पदार्थ सचेतन ही उससे पैदा हो सकेंगे, न कि असंख्य अचेतन पदार्थ, जबकि उपादान के अनुरूप ही कार्यों की उत्पत्ति होती है। यदि ईश्वर के सिवाय कोई अन्य उपादान माना जायेगा तो उसकी उत्पत्ति कैसे हुई? और फिर जिससे उसकी उत्पत्ति हुई तो उसकी किससे हुई? इस प्रकार प्रश्न उठते ही चले जायेंगे। अन्त में जिसे भी अनुत्पन्न माना जायेगा उसे नित्य स्वीकार करना पड़ेगा, फिर जगत् को ही नित्य स्वीकार करने में कौनसी बाधा है? इसके अतिरिक्त न तो ईश्वर को किसी ने जगत की रचना करते देखा है और न बीज वृक्ष या गर्भज मनुष्यादि प्राणियों की संतान परम्पराएँ ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता सिद्ध करती हैं, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में पुरुष और स्त्री के संयोग बिना पुरुषों की उत्पत्ति या बीज बिना वृक्षों की उत्पत्ति का होना और वह भी निराकार ईश्वर से? नितांत असम्भव है।

ईश्वर को जगत्कर्त्ता मानने और भी कई बाधाएँ आकर उपस्थित होती हैं। कर्तावादी ईश्वर को निराकार, निर्विकार, पूर्ण सुखी, सच्चिदानन्द, पूर्णज्ञाता, दृष्टा, नित्य, व्यापक और सर्वशक्तिसम्पन्न एक स्वर से स्वीकार करते हैं। यही नहीं, उसे परमदयालु, अशरण-शरण और न्यायकर्त्ता भी माना जाता है। उक्त गुणविशिष्ट परमात्मा के एक २ गुण पर विचार करने मात्र से ईश कर्तृत्व की कल्पना शतशः विदीर्ण हो जाती है। सर्व प्रथम निराकार ईश्वर से साकार जगत् की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रचना का होना ही असम्भव है, क्योंकि ईश्वर को सर्वव्यापक और निर्विकार भी माना जाता है, अतः इसमें किसी प्रकार की क्रिया और विकार भी पैदा नहीं हो सकते। यदि उसमें क्रिया और विकार स्वीकार किया जायेगा, जैसा कि जगत जैसी वस्तु की रचना करने के लिए उनका मानना आवश्यक है, तो ईश्वर की सर्व व्यापकता और निर्विकारता भी समूल नष्ट हो जायेगी। यदि कहो कि विना क्रिया और विकार के ही ईश्वर सर्व शक्तिमत्ता द्वारा जगत की रचना करता है, तो यह भी ठीक नहीं। ऐसा मानने पर इच्छा मात्र से जगत की उत्पत्ति माननी पड़ेगी, जिसका होना असम्भव है। यदि इस असंभव कल्पना को भी थोड़ी देर के लिए स्वीकार कर लिया जाये, तो यह प्रश्न आकर गला दबोचता है कि निर्विकार ईश्वर में इच्छा पैदा ही क्यों हुई ? अज्ञानी,मोही, अकृतकृत्य, असन्तुष्ट, दुःखी व अपूर्ण शक्तिसम्पन्न प्राणियों में ही दुःख या आकुलता दूर करने ने लिए इच्छाएँ पैदा हुआ करती हैं ; किन्तु ईश्वर जबकि निर्मोह, कृतकृत्य,।पूर्ण सुखी और वस्तुतत्व का ज्ञाता व सर्व शक्तिसम्पन्न है तो उसके इच्छा पैदा हो ही नहीं सकती। यदि फिर भी इच्छा की उत्पत्ति ईश्वर के मानी जायेगी तो उपर्युक्त विशेषणों द्वारा उसका गुण-गान करने से क्या लाभ ?

यदि कहा जाय कि उपरोक्त गुणों के होते हुए भी उसके कार्य करने की भी इच्छा होती है जिसे वह जगत की रचना कर पूर्ण करता है थोड़ी देर के लिये इस कथन को स्वीकार कर लेने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पर जो २ बाधाएँ आकर उपस्थित होती हैं उनका कुछ भी संतोष-प्रद उत्तर नहीं मिल पाता।

सर्वशक्तिमान, दयालु परमात्मा ने यदि यह दुनियां बनाई होती तो इसमें दीन दुःखी प्राणियों का अस्तित्व एवं असंख्य अत्याचार, पाप, पाखंड, वासना, व्यभिचार, हिंसा आदि का नारकीय दृश्य कभी भी दिखाई नहीं देता। "ईश्वर की मर्ज़ी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता" इस सिद्धान्त को बिना किसी तर्क और प्रमाण के गले उतार लेना आसान है; किन्तु जब यह प्रश्न उठता है कि तो क्या दुनियां में होने वाले सम्पूर्ण पाप और अत्याचार भी ईश्वरेच्छा से ही हो रहे हैं ? यदि हां, तब तो पापकर्ता सांसारिक प्राणी निर्दोष और ईश्वर ही पूर्ण दोषी स्वयं सिद्ध हुआ ; फिर पुण्य और पाप का फल हम निरपराध प्राणियों को क्यों मिलता है ? और पाप जिस ईश्वर की मर्जी से होते हैं वह चैन की वंशी क्यों बजाता है ? तथा हमें दया, क्षमा, परोपकार आदि के करने और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि के न करने के उपदेश देने व सुनने की आवश्यकता ही क्या है, जबकि ईश्वरेच्छा से ही हम सब कुछ करते हैं और हमें कुछ भी स्वतंत्रता नहीं है ? यदि कहा जाय कि कर्म करने में प्राणी स्वतन्त्र हैं; किन्तु उनका फल उन्हें ईश्वर द्वारा ही प्राप्त होता है, तो "ईश्वर की मर्जी के बिना पत्ता भी नहीं हिलता" इस सिद्धान्त पर स्वयं ही कुठाराघात हो गया; क्योंकि उसकी मर्ज़ी के बिना प्राणी कर्म करने में स्वतन्त्रहैं और यदि ऐसा है तो प्राणियों को कर्मफल

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भोगना भी उन्हीं के आधीन मानने में क्या आपत्ति है ? जो जैसे कर्म करता है उसका फल कर्म उन्हें स्वयं ही समयानुसार दिया करते हैं। जैसे कि खाया हुआ भोजन अपने आप ही पेटमें खून, मांस, वीर्य आदि रूप बनता और प्राकृतिक रूप से बल, रोग, तन्दुरुस्ती या कामादिक विकारों को पैदा करता है, वैसे ही कर्मबन्धन भी समयानुसार फल देता है।

इसके सिवाय जबकि ईश्वर सर्वशक्तिमान, घट घट व्यापक, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और आदर्श न्यायकर्त्ता है तो उसका क्या यह कर्त्तव्य नहीं है कि इन अज्ञ किन्तु अपनी ही सन्तान सांसारिक प्राणियेां को पाप करने ही न दे। एक अल्पज्ञ, स्वल्प शक्तिसम्पन्न पिता भी जब अपनी सन्तान को जहां तक उससे हो सकता है, ऐसी ही शिक्षा देता है जो उसे कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लगावे, और अपनी शक्त्यिनुसार उसका हित ही करता रहता है। तो क्या परमदयालु, आदर्श न्यायशील, सर्वशक्तिमान, परम पिता ईश्वर का यह कर्तव्य नहीं है कि वह अपनी सर्व शक्ति लगा कर अपनी सम्पूर्ण सन्तान को पाप करने ही न दे ? क्या यही ईश्वरीय न्याय है कि रोकने की शक्ति रखते हुए भी स्वेच्छा पूर्वक अव्वल तो प्राणियेां से हत्याकाण्ड, व्यभिचार, बलात्कार, अत्याचार आदि भीषण कृत्येां को जी खोल कर करवा लेना, और फिर बेचारों को सङ्कट के सागर में पटक कर अपनी सर्व शक्तिमत्ता दिखाना !

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"महमूद गज़नवी अपने प्रत्येक आक्रमण के अवसर पर जो असंख्य, निरीह भारतीय नर नारियों का अति निर्दयता पूर्वक बध कर उनका धन, जन, सर्वस्व ले गया, उसमें उसका कुछ भी कसूर नहीं; क्योंकि उसने तो केवल ईश्वरीय व्यवस्थानुसार उन लोगों को अपने अपने पूर्व जन्मों के फल दिये (जब कि सुख, दुःख आदि कर्म फल का दाता ईश्वर है) यदि कहो कि वे नर नारी कर्म फल की दृष्टि से निर्दोष थे और ईश्वर के यहां से गज़नवी को इस अत्याचार का दण्ड अवश्य मिलेगा, तो जगत् पिता, परमदयालु दीनबन्धु, अशरण शरण, सर्वशक्तिमान्, घट घट व्यापी, न मालूम क्या २ कहलाने वाला तुम्हारा वह न्यायशील ईश्वर किस खर्राटे की नींद सो रहा जो कि उसकी समझ मुबारक में—

"Prevention is better than cure"

अर्थात् बीमार को आराम कर देने से तो यही अच्छा है कि बीमारी होने ही न दी जाए—यह उत्तम नीति न आई, और उन दीन दुखियों की रक्षा का प्रबन्ध पहिले से ही नहीं किया? वाह रे जगन्नियन्ता! उसके देखते देखते २ इतने भारी कांड हो गये, पर उसने अपने कान भी नहीं फट फटाये !!"*

इन दोषों के अतिरिक्त यदि हम ईश्वर को कर्म फल दाता स्वीकार भी करलें तो फिर यह प्रश्न उठता है कि सृष्टि की

---

* श्री रजनीकान्त शास्त्री B. A. के एक लेख का कुछ अंश।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि में जो ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों को उत्पन्न किया था उनका शरीर किस पूर्व जन्म के कर्म का फल था ? यदि कहा जाय कि प्रलय के पूर्व की सृष्टि का, तो प्रलय किस लिए किया गया ? प्रलय इसलिए किया गया माना जाता है कि दुनियां में जब पाप बहुत बढ़ जाते हैं और पापिष्ठ एवं दुष्ट आत्माओं को सब सजाओं से बड़ी सजा ईश्वर देता है तो वह उनका नाश कर डालता है यानी प्रलय कर देता है। इस भांति प्रलय कर देने पर सब प्राणियों को उनकी दुष्टता का फल मिल गया। अब उनके और कौन से कर्म शेष रह गये, जिनका फल फिर से शरीर प्रदान कर ईश्वर भोगवाना चाहता है ? तथा दुष्टों के निग्रह के लिये प्रलय करने से तो दुष्टों को पैदा न करना ही अच्छा था। इस सबके अतिरिक्त दुष्टों का निग्रह और सज्जनों का पालन बिना राग, द्वेष के नहीं हो सकता, जिनके करने से ईश्वर को भी उनका फल भोगने का प्रसङ्ग आवेगा। फिर जब कि कोई पदार्थ बिना कर्ता के यदि पैदा नहीं होता तो ईश्वर भी एक पदार्थ है, उसे किसने पैदा किया ? यदि कहो कि वह स्वयं सिद्ध है तो यह चराचर जगत और उसके पदार्थ भी अनादि निधन स्वयं सिद्ध हैं, यही क्यों न मान लिया जाय ?

कहां तक कहें, ईश्वर के जगत्कर्त्ता और कर्मफलदाता स्वीकार करने में अनेक बाधाएँ और दोष आते हैं, एवं 'जगत्-कर्त्ता ईश्वर हैं' इस बात का साधक–सिवाय कल्पना के, कोई प्रमाण भी नहीं है। अत एव परमात्मा को ज्ञाता, दृष्टा, सच्चिदा-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नन्द मय, वीतराग स्वीकार करने पर भी जैन दर्शन उसे जगत्-कर्त्ता स्वीकार नहीं करता। विज्ञान तो स्पष्टतः दुनियां और उसके पदार्थों, को अनादि अनन्त स्वीकार करता है। अस्तु,

यद्यपि, जैन धर्म परमात्मा की पूजा से उसका खुश होना या न करनेसे नाराज़ होना, स्वीकार नहीं करता, क्योंकि परमात्मा स्पष्टतः वीतराग है; फिर भी वह परमात्मा की आदर्श के रूप में पूजा, भक्ति करने और आवश्यकतानुसार उसकी जीवन मुक्तावस्था की ध्यानाकार वीतराग शान्त मुद्रा-युक्त प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करनेकी आत्मध्यान और सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करता है; क्यों कि परमात्मा बनने के लिए परमात्मा का ध्यान और उसको आदर्श मान कर प्रतिष्ठा करना आवश्यक है। इस भांति जैनदर्शन के परमात्मा, परलोक, कर्मवाद आदि के स्वीकार करने से उसकी आस्तिकता भी स्पष्टतः अक्षुण्ण है। ईश कर्त्तत्व की भ्रमपूर्ण कल्पना को वह अवश्य ही स्वीकार नहीं करता, और उसकी इस मान्यता में युक्ति, तर्क व प्रमाण पूर्णतः उसके साथ हैं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैनधर्म की प्राचीनता

यह तो मानना ही जाहिये कि समीचीनता का प्राचीनता के साथ कोई घनिष्ठ संबन्ध नहीं है, और न कोई यह नियम है कि जो कुछ प्राचीन है वह सब कुछ उपादेय ही है तथा नवीन सब हेय, क्योंकि ऐसा मान लेने पर पापवासना आदि दुष्कर्म भी केवल प्राचीनता बल पर उपादेय ठहर जावेंगे, जो कि अनादि काल से संसार में विद्यमान हैं, और आत्माओं को सांसारिक जाल में फँसाए रख कर उन्हें जन्म मरणादि के सङ्कटों में घसीट रहे हैं। इस लिए समीचीनता (अच्छाई) यदि आज ही उत्पन्न हुई हो तो वह कल्याण की दृष्टि से तुरन्त ग्रहण करने योग्य है, न कि बुराई, जो कि असंख्य वर्षों से चली आ रही हो। इस भांति यदि जैन-धर्म का उदयकाल प्राचीन न भी माना जाय, किन्तु है वह सार्व और समीचीन धर्म, जिससे कि विश्व के न केवल मानव समाज का—बल्कि प्राणीमात्र का कल्याण होना उसके उपरोक्त विवेचन से सुनिश्चित है, तो उसकी उपादेयता में भी रञ्च मात्र सन्देह नहीं होना चाहिये। फिर भी जैन धर्म कब और किसके द्वारा संस्थापित हुआ इस प्रश्न को इतिहास प्रेमी पाठकों के मन में उठने से रोका नहीं जा सकता। अतः इसका उत्तर भी सन्तोषप्रद एवं प्रमाण-संगत मिलना चाहिये। साथ ही जैन धर्म के इतिहास के सम्बन्ध में लोक में भ्रम भी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

फैला हुआ है– कोई इसे बौद्ध धर्म की शाखा या बौद्ध धर्म से इसकी उत्पत्ति मानता है, तो कोई हिन्दु धर्म की; कोई भगवान् महावीर को जैन धर्म का संस्थापक समझता है, तो दूसरा भ० पार्श्वनाथ को। इन भ्रमात्मक कल्पनाओं का निराकरण होना भी सत्यान्वेषण की दृष्टि से आवश्यक है। अतः अब तक समुपलब्ध हुई भारतीय पुरातत्व की सामग्री, प्राचीन साहित्यक प्रमाणों, एवं प्राच्य व पाश्चात्य अजैन विद्वानों की निष्पक्ष गवेषणात्मक ऐतिहासिक खोजों तथा युक्तियों द्वारा इस सम्बन्ध में भी संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

प्रत्येक बुद्धिमान यह भली भांति जानता है कि दुनियां में जबसे कोई रोग है तभी से उसकी औषधि भी अवश्य है। यह बात दूसरी है कि किसी समय उस औषधि का कोई जानकार समुपलब्ध न हो, किन्तु इतने मात्र से औषधि का अभाव नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार अन्धकार जबसे संसार में अस्तित्व रखता है तभी से उसका प्रतिपक्षी प्रकाश भी। संभव है कभी प्रकाश पर अन्धकार की विजय हो जाय और प्रकाश की किरणें क्षीण या अस्तित्वहीन सी दिखाई देने लगें, किन्तु थोड़ी देर पश्चात् प्रकाश की विजय का डंका फिर से बजता हुआ सुनाई पड़ने लगता है। इसी तरह संसार और मुक्ति, जीव की ये दो अवस्थाएँ हैं—पहली दुःखमय और दूसरी सुखमय। दुःखमय अवस्था, जो कि संसार के नाम से पुकारी जाती है, जीव के अपने ही राग द्वेषादि विकारों एवं पापादि दुष्कार्यों के कारण

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सन्तान क्रम से नाना रूप में प्रकट होती रहती है। दुःखमय अवस्था का बोध प्राप्त कर आत्मा को सुखमय बनाने और दुःखों से छूटने का प्रयत्न प्रारम्भ करने से वह संसार बंधन से मुक्त हो जाती है। इसलिए जबसे संसार बंधन है तभी से उससे छूटने का उपाय भी, और इस बन्धन से छूटने एवं दुःखों व रागादि विकारों पर विजय प्राप्त करने के वीरतापूर्ण—उपाय या साधन को ही जैनधर्म कहते हैं। अतः सिद्ध है कि संसार से छूटने का उपाय (जैनधर्म) संसार की भांति ही अनादि होना चाहिये। यह बात दूसरी है कि उसके जानने, प्रकट करने या धारण करने वाले कभी कम कभी अधिक और कभी बिल्कुल ही न पाये जाते हों, किंतु इससे संसार के दुखों से छूटने के उपाय स्वरूप धर्म का अभाव नहीं माना जा सकता।

अब ज़रा इतिहास व वेद पुराणादि साहित्य में जैनधर्म के अस्तित्व और तत्संबन्धित प्राचीनता पर दृष्टिपात कीजिए। कहा जाता है कि दुनियां की सबसे प्राचीन पुस्तक वेद है। इन वेदों में ऋषियों द्वारा जैन तीर्थंकरों (मुख्य प्रचारकों) के नामों का उल्लेख मिलता है। अतः कम से कम उन ऋषियों और वेदों की उत्पत्ति से भी पूर्व जैनधर्म का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाता है; क्योंकि जब वे तीर्थंकर हो गये थे और जैसे २ उन्होंने कार्य किए थे उनका तदनुसार वर्णन उनके हो जाने के पश्चात् ही हो सकता है। वेद के जिन मंत्रों में जैन तीर्थंकरों के नामों का या अर्हत का उल्लेख है उनमें से कुछ यहां उद्धृत किए जाते हैं—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमम्वं न वा ओ जीयो रुद्रत्वदस्ति ॥
(ऋग्वेद अ० २ सूक्त ३३ वर्ग १७)

भावार्थ—हे अर्हन् ! तुम वस्तु स्वरूप धर्मरूपी बाणों को, उपदेश रूपी धनुष को, तथा आत्म चतुष्टय रूप आभूषणों को, धारण किए हो । हे अर्हन् ! आप संसार के सब प्राणियों पर दया करते हो और हे कामादिक को जलाने वाले आपके समान कोई रुद्र नहीं है ।

निम्न लिखित मंत्रों में अर्हन्त या अर्हन् शब्द का भी उल्लेख है—

इमंस्तोममर्हतेजातवेदसेरथमिव संमहेमामनीषय ।
भद्राहिनः प्रमतिरस्यसंसद्यग्रे सरयेमारिषामावयंतव ॥
ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ६४

अर्हन्तायेषदानवोनरोप्रसामिशवसः प्रमञ्जयञ्जियेम्योदि वो
अर्चामहद्भ ।
ऋग्वेद मंडल ५ सूक्त ५२–५

अर्हन्त या अर्हन् शब्दों के अतिरिक्त, जो कि "जिन" का ही पर्यायवाची है और जो जैनधर्म में मान्य पांच परमेष्ठियों में से प्रथम परमेष्ठी के लिए प्रयुक्त होता है, वेदों में जैनियों के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव, ७ वें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ, २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के नामों का उल्लेख व उनकी स्तुति भी पाई जाती है । जैसे—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ऋषभं मा समासानां सपत्नानां विषासहितम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥

—ऋग्वेद

इस मंत्र में ऋषभ को देवता मानकर उनकी स्तुति की गई है और ये ऋषभ जैनियों के प्रथम तीर्थंकर हैं।

"ॐ सुपार्श्वमिन्द्र हवे"

—यजुर्वेद

इसमें ७ वें तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ जी का नामोल्लेख करके उन्हें आहुति दी गई है। इसी प्रकार २२ वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ जी की स्तुति व पूजा सूचक भी कई मंत्र हैं—

वाजस्य नु प्रसवऽआवभूवे मा च विश्वा भुवनानि सर्वतः
स नेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टि वर्द्धयमानो
अस्मै स्वाहा।

(यजुर्वेद अ० ९ मंत्र २५)

इस मंत्र में नेमिनाथ जी की स्तुति करते हुए उन्हें आहुति प्रदान की गई है।

स्वस्ति न इन्द्रोवृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्व वेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्ट नेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

इस मंत्र में इन्द्र, पूषा, अरिष्ट नेमि व बृहस्पति से मंगल-कामना की गई है।

वेदों के सिवाय भारत के पाणिनि आदि वैयाकरणों से भी बहुत प्राचीन वैयाकरण शाकटायन ने, जिनका समय आज

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

से करीब ३००० हजार वर्ष से भी प्राचीन समझा जाता है अपने उणादि, प्रकरण के एक सूत्र में "जिन" शब्द का प्रयोग किया है और ये "जिन" ही जैनधर्म के सर्वेसर्वा हैं।

इणसिञजिदीङ्क्ष्यविभ्योनक्। जिनोऽर्हन्।

—सिद्धांत सूत्र ३०३

इसके अतिरिक्त मोहनजोदारू (सिन्ध) की खुदाई में जो सीलें व सिक्के प्राप्त हुए हैं उनमें से कुछ पर 'नमो जिनेश्वराय' लिखा है। * तथा सिक्कों पर ध्यानस्थ भगवान ऋषभदेव की मूर्तियां व उनके नीचे बैल का चिह्न मौजूद है, जो जैन शास्त्रों में वर्णित लक्षणों से पूर्ण रूप में मिलता है और जिसे अजैन विद्वान प्रोफेसर चन्दा ने ऋषभदेव की मूर्ति स्वीकार किया है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इन उपलब्ध सीलों व सिक्कों आदि सामग्री के सम्बन्ध में, जो कि मोहनजोदारू की खुदाई में प्राप्त हुई है, सभी पुरातत्वज्ञों ने उसे ५००० वर्ष की पुरानी स्वीकार किया है। इसलिये यह बात निर्विवाद है कि अब से ५००० वर्ष से भी पूर्व जैनधर्म का प्रकाश यहां पर सविशेष रूप से फैला हुआ था।

---

* It may also be noted that the Inscription on the Indus seal No 449 reads according to my decipherment Jineshwara Jinesh.

(Indian Historical quarterly Vol. VIII N. 2, sp. Dr. Prannath Vidyalankar).

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जो लोग जैनधर्म के वर्तमान कालीन २४वें तीर्थंकर भगवान् महावीर या २३वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ को ही जैन धर्म का संस्थापक मानते हैं आशा है उनका भ्रम उपर्युक्त प्रमाणों से दूर हो जायेगा। इसके अतिरिक्त जिन अन्य प्रमाणों द्वारा जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध होती है उनमें से हिन्दू धर्म का पुराण साहित्य भी मुख्य है। भागवत पुराण में स्पष्टतया भगवान् ऋषभदेव को, जिनका समय जैन शास्त्रानुसार अब से असंख्यात वर्ष पूर्व और इतिहास की आधुनिक खोज के बाहर है, जैनधर्म का प्रवर्तक लिखा है। पाठकों की सुविधा के लिए भागवत के हिन्दी भाष्य को नीचे उद्धृत किया जाता है—

"ऋषभ अवतार कहे हैं कि ईश्वर अगनीन्द्र के पुत्र नाभि से सुदेवी पुत्र ऋषभदेव जी भये। समान दृष्टा जड़ की नांई योगाभ्यास करते भये, जिनके परमहंस्य पद को (दिगम्बरता को) ऋषियों ने नमस्कार कीनो, स्वस्थ, शांत इन्द्रिय सब संघ त्यागे ऋषभदेव जी भये जिनसे जैनधर्म प्रकट भयो।"

—भागवतपुराण २-७-६-१० ज्वालाप्रसाद भाष्य।

भागवत के अध्ययन के पश्चात् विश्वविख्यात् दार्शनिक विद्वान् सर राधाकृष्ण ने अपने 'इण्डियन फ़िलासफ़ी' नामक ग्रन्थ में लिखा है—

The Bhagwat Puran endorses the view that Rishabh was the founder of Jainism."

—Indian Philosophy. 287

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात् भागवत पुराण में स्वीकार किया गया है—कि जैनधर्म के संस्थापक ऋषभदेव थे। भागवत के अतिरिक्त विष्णु पुराण, वायु पुराण, लिङ्ग पुराण, कूर्म पुराण, मत्स्य पुराण, मार्कण्डेय पुराण, अग्नि पुराण, आदि में भी भगवान ऋषभदेव और उनके पिता आदि का वर्णन है जो जैन पुराणों से मिलता है।

जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा० जैकोबी लिखते हैं—

"There is nothing to prove that Parshva was the founder of Jainism. Jain tradition is unanimous in making Rishabha the first Tirthanker (as its founder) there may be something historical in the tradition which makes him the first Tirthanker.

अर्थात्—पार्श्वनाथ को जैनधर्म का संस्थापक सिद्ध करने के लिए प्रमाण का अभाव है। जैन मान्यता ऋषभ देव को अविरोध जैनधर्म का संस्थापक स्वीकार करती है। जैनियों की इस मान्यता में ऐतिहासिक सत्य की सम्भावना है।

इस सम्बन्ध में श्री वरदाकान्त मुख्योपाध्याय M. A. प्रसिद्ध बङ्ग विद्वान् लिखते हैं—

"लोगों का यह भ्रमपूर्ण विश्वास है कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे; किन्तु इसका प्रथम प्रचार ऋषभदेव ने किया था, इसकी पुष्टि में प्रमाणों का अभाव नहीं है।" आगे चलकर यही विद्वान् प्रमाणों को उपस्थित करते हुए लिखते हैं—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१—बौद्ध लोग महावीर को निर्ग्रन्थ अर्थात् जैनियों का नायक मात्र कहते हैं, स्थापक नहीं कहते।

२—जर्मन डाक्टर जैकोबी भी इसी मत से सहमत हैं। (इनका मत ऊपर दिया जा चुका है)।

३—हिन्दू शास्त्रों और जैन शास्त्रों का भी इस विषय में एक मत है। भागवत के पांचवें स्कन्ध के अध्याय २-६ में ऋषभदेव का कथन है, जिसका भावार्थ यह है—

चौदह मनुओं में से पहिले मनु स्वयंभू के पौत्र नाभि का पुत्र ऋषभदेव हुआ, जो दिगम्बर जैन संप्रदाय का आदि प्रचारक था। इनके जन्मकाल में जगत् की बाल्यावस्था थी, इत्यादि।

४—डाक्टर फुहरर ने जो मथुरा के शिला लेखों से समस्त इतिवृत्त का खोज किया है उसके पढ़ने से जाना जाता है कि पूर्वकाल में जैनी ऋषभदेव की मूर्तियां बनाते थे। ये शिला-लेख कनिष्क, हुवष्क आदि राजाओं के राजत्वकाल में आज से दो हज़ार वर्ष पहिले खोदे गये हैं।

५—शङ्कराचार्य महाराज स्वयं स्वीकार करते हैं कि जैन धर्म अति प्राचीनकाल से है। वे 'वादरायण' व्यास के वेदांत सूत्र के भाष्य में कहते हैं कि दूसरे अध्याय के द्वितीय पाद के सूत्र ३३-३६ जैनधर्म ही के सम्बन्ध में हैं।

६—शारीरिक मीमान्सा के भाष्यकार रामानुज जी का भी यही मत है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

७—योगवशिष्ठ रामायण, वैराग्य प्रकरण अध्याय १५ श्लोक ८ में श्रीरामचन्द्र जी जिनेन्द्र के सदृश शांत प्रकृति होने की इच्छा प्रकट करते हैं, यथाः—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शान्तिमासितु-मिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा॥

(इससे प्रकट है कि रामचन्द्र जी के समय में जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था और रामचन्द्र जी ने जैनग्रन्थानुसार आत्मशान्ति प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी, जैनधर्मानुसार तो रामचन्द्र जी दिगम्बर दीक्षा धारण कर तपस्वी हुए और अन्त में मोक्ष को प्राप्त हुए हैं।)

८—रामायण के बालकांड, सर्ग १४, श्लोक २२ में लिखा है कि राजा दशरथ ने श्रमण गणों (अर्थात् दिगम्बर जैनसाधुओं का अतिथि सत्कार किया—

"तापसा भुञ्जते चापि श्रमणा भुञ्जते तथा।"

(बालकांड सर्ग १४ श्लोक २२)

भूषण टीका में श्रमण शब्द का अर्थ दिगम्बर अर्थात् सर्व वस्त्ररहित जैनमुनि किया है यथा—

"श्रमणाः दिगम्बराः श्रमणा वात वसना इति।"

जैनधर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में भारत में स्वराज्य आन्दोलन के सुप्रसिद्ध नेता, हिन्दू धर्म के महान् विद्वान् एवं इतिहासज्ञ स्वर्गीय लोकमान्य पंडित बालगङ्गाधर तिलक ने तारीख ३० नवम्बर सन् १९०४ को श्वेताम्बर जैन कांफ्रेन्स

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बड़ौदा में जो भाषण दिया था उसमें आपने स्पष्टतया स्वीकार किया था कि—

"ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित है। सुतरां इस विषय में इतिहास के दृढ़ सबूत हैं।"

आगे चलकर आप फ़र्माते हैं—

"गौतमबुद्ध महावीर स्वामी (जैन तीर्थंकर) का शिष्य था, जिससे स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्ध धर्म की स्थापना के पूर्व जैन धर्म का प्रकाश फैल रहा था। चौबीस तीर्थङ्करों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्कर थे इससे भी जैनधर्म की प्राचीनता जानी जाती है। बौद्ध धर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बौद्ध धर्म के तत्व जैन धर्म के तत्वों के अनुकरण हैं।"

तिलक महाराज के उपर्युक्त कथन से जो लोग जैन धर्म को बौद्ध धर्म की शाखा या उससे उत्पन्न हुआ मानते हैं, आशा है उनका भ्रम भी दूर हो हो जायगा। आपने यह भी फ़रमाया था कि 'अहिंसा परमो धर्मः' के उदार सिद्धान्त की चिरस्मरणीय छाप जैन धर्म ने ही ब्राह्मण धर्म पर मारी है। भारत में यज्ञों द्वारा जो असंख्य पशुहिंसा धर्म के नाम पर की जाती थी उसको सदा के लिये विदा कर देने का श्रेय भी जैन धर्म के हिस्से में है। ब्राह्मण और हिन्दू धर्म में मांस भक्षण और मदिरा-पान बन्द हो गया, यह भी जैन धर्म का प्रताप है ब्राह्मण धर्म जैन धर्म से मिलता हुआ है इस कारण टिक रहा है, आदि।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्रीयुत् महामहोपाध्याय, सत्यसम्प्रदायाचार्य, पण्डित राम-मिश्र जी शास्त्री, प्रोफेसर संस्कृत कालेज बनारस ने पौष शुक्ला १ सं० १९६२ को व्याख्यान देते हुए जो जैनधर्म के विषय में कहा था, उसका कुछ अंश नीचे दिया जाता है—

'ज्ञान, वैराग्य, शान्ति, क्षांति, अदम्भ, अनीर्ष्या, अक्रोध अमात्सर्य, अलोलुपता, शम, दम, अहिंसा, समदृष्टिता इत्यादि गुणों में एक २ गुण ऐसा है कि जहां वह पाया जाय वहां पर बुद्धिमान पूजा करने लगते हैं। तब तो जहां (जैनधर्म में) पूर्वोक्त सब गुण निरतिशय सीम होकर विराजमान हैं, वहां उनकी पूजा न करना अथवा ऐसे गुण पूजकों की पूजा में बाधा डालना क्या इन्सानियत का कार्य है ?

मैं आपको कहां तक कहूँ बड़े २ नामी आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में जो जैन मत का खण्डन किया है उसे सुन व देख कर हँसी आती है। स्याद्वाद का यह जैनधर्म अभेद्य किला है। उसके अन्दर वादी प्रतिवादियों के माया मय गोले नहीं प्रवेश कर सकते सज्जनो ! एक वह दिन था कि जैन संप्रदाय के आचार्यों की हुङ्कार से दशों दिशायें गूँज उठती थीं। जैन मत तब से प्रचलित हुआ जब से संसार में सृष्टि का आरम्भ हुआ। इसमें मुझे किसी प्रकार का उज्र नहीं कि जैन दर्शन वेदांतादि दर्शनों से पूर्व का है। आदि...।

स्व० प्रसिद्ध इतिहासज्ञ विद्वान् साहित्यरत्न लाला कन्नोमल एम० ए०, सेसन जज धौलपुर ने अपने एक लेख में लिखा था—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"सभी लोग जानते हैं कि जैन धर्म के आदि तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव स्वामी हैं, जिनका काल इतिहास परिधि से कहीं परे है। इनका वर्णन सनातन धर्मी हिन्दुओं के श्री मद्भागवत पुराण में भी है। ऐतिहासिक गवेषणा से मालूम होता है कि जैनधर्म की उत्पत्ति का कोई निश्चित काल नहीं है। प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों में जैनधर्म का हवाला मिलता है।

अब हम, जो लोग बिना किसी आधार के जैनधर्म को हिन्दू धर्म या बौद्ध धर्म की शाखा कहने लगते हैं या उनसे उसकी उत्पत्ति बताने लगते हैं, उनके भ्रम को दूर करने के लिए और प्रमाण उपस्थित करते हैं—श्रीयुत् हरिसत्य भट्टाचार्य बी० ए०, बी० एल० लिखते हैं—

जैन तथा बौद्ध धर्म के तत्वों की यदि ठीक २ आलोचना की जाय तो यह स्पष्ट रूप में प्रकट हो जायगा कि ये दोनों धर्म एक दूसरे से पूर्णतया पृथक् हैं। बौद्धों का कहना है कि शून्य ही एक मात्र तत्व है। जैनों के मतानुसार सत्पदार्थ है एवं उसकी संख्यायें अगणित हैं। बौद्धमत के अनुसार आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं हैं, परमाणु का भी कोई अस्तित्व नहीं। दिक्, काल, धर्म [गतितत्व] ये कुछ भी नहीं है, ईश्वर नहीं है, किन्तु जैनों के मत में इन सबों की सत्ता मानी जाती है। बौद्धों का कहना है कि निर्वाण लाभ होते ही जीव शून्य में विलीन हो जाता है, किन्तु जैनमत के अनुसार मुक्त जीव का अस्तित्व चिर-आनन्दमय है, और वही उसका सच्चा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अस्तित्व हुआ करता है। यहां तक कि बौद्ध दर्शन का कर्म भी जैनदर्शन के कर्म से भिन्नार्थवाचक हुआ करता है। उपर्युक्त कारणों से ही हम जैनधर्म को बौद्धधर्म की एक शाखा मानने को तैयार नहीं हैं।"

[अनेकान्त वर्ष ३ किरण ७]

सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता प्रोफेसर मैक्समूलर कहते हैं—

"विशेषतः प्राचीन भारत में किसी धर्मान्तर से कुछ ग्रहण करके एक नूतन धर्म प्रचार करने की प्रथा ही नहीं थी; जैनधर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा स्वतन्त्र है, उसकी शाखा या रूपान्तर नहीं।"

डाक्टर ए० गिरनाट [Dr. A. Guernot] नामक फ्रेंच विद्वान् लिखते हैं—

"Concerning the antiquity of jainism Comparatively to Budhism, the former is truly more ancient than the latter. There is very great ethical value in jainism for men's improvement. Jainism is a very original, independent and systomatical doctrine."

अर्थात् जैनधर्म और बौद्धधर्म की प्राचीनता के सम्बन्ध में मुकाबला करने पर जैनधर्म बौद्धधर्म से वास्तव में बहुत प्राचीन है। मानव समाज की उन्नति के लिए जैनधर्म में सदाचार का बड़ा मूल्य है। जैनधर्म एक मौलिक, स्वतन्त्र और नियमित सिद्धान्त है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इन विद्वानों के अतिरिक्त एक और पाश्चात्य विद्वान् मेजर जनरल जे० सी० आर० फर्लाङ्ग [Major General J. C. R. Furlong F. R. S. E. etc.] महोदय अपनी 'The short study in Science of Comparative religion नामक पुस्तक में सिद्ध करते हुए लिखते हैं कि ईसा के अनगिनती वर्ष पहिले से जैनमत भारत में फैला हुआ था। आर्य लोग जब मध्य भारत में आए, तब यहां जैन लोग मौजूद थे। उक्त पुस्तक के कुछ वाक्य ये हैं—

"Through what historical channels did Budhism influence early christianity, we must widen this enquiry by making it embrace Jainism, the undoubtedly prior faith of very many of millions through untold millennions. [Intro. P. 1]"

भावार्थ—किन ऐतिहासिक मार्गों से बौद्ध धर्म ने पुराने ईसाई धर्म पर असर डाला, इसकी खोज करते हुए यह कहना होगा कि इसने जैनमत स्वीकार किया जो वास्तव में अकथनीय हजारों वर्षों से करोड़ों मनुष्यों का प्राचीन धर्म था। आगे चलकर इसी पुस्तक में आप लिखते हैं—

"It is impossible to find a beginning for Jainism." [Intro. P. 13]

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"Jainism thus appears an earliest faith of India [Intro P. 15]

अर्थात् जैनधर्म की शुरूआत (प्रारम्भिक काल) का पता पाना असंभव है। इस तरह भारत का सबसे प्राचीन धर्म यह जैनधर्म ही मालूम होता है।

इस भांति प्राच्य और पाश्चात्य वर्तमान ऐतिहासिक विद्वान् प्रायः एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि जैनधर्म एक स्वतंत्र और मौलिक धर्म है और वह अत्यन्त प्राचीन है, जिसका प्रारम्भ ऐतिहासिक सीमा से परे है। इस सम्बन्ध में और भी प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं, किन्तु हम उनसे पुस्तक का कलेवर न बढ़ाकर एक निष्पक्ष अजैन विद्वान् की जैनदर्शन के सम्बन्ध में सम्मति उद्धृत कर विराम लेंगे जिन्होंने कि तुलनात्मक रीति से संसार के धर्मों का अध्ययन किया है—

श्रीयुत् हरिसत्य भट्टाचार्य बी० ए०, बी० एल० अपने "भारतीय दर्शनों में जैनदर्शन का स्थान" शीर्षक निबन्ध में लिखते हैं—"यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारतवर्ष के यावतीय दार्शनिक मतवादों में इसका (जैनदर्शन का) एक गौरवमय स्थान अवश्य रहा है, और आज भी है। तत्व विद्या के यावतीय (सम्पूर्ण) अङ्ग इसमें विद्यमान होने के कारण जैनदर्शन को एक सम्पूर्ण दर्शन मान लेने में कोई मतभेद नहीं होना चाहिये। वेदों में तर्क विद्या का उपदेश नहीं है, वैशेषिक कर्माकर्म या धर्माधर्म की शिक्षा नहीं देता; किंतु जैनदर्शन में न्याय, तत्वविचार,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

धर्म विचार, धर्मनीति, परमात्म तत्व आदि सभी बातें विशद रूप में विद्यमान हैं। जैनदर्शन प्राचीन काल के तत्वानुशीलन का सचमुच एक अनमोल फल है, क्योंकि जैनदर्शन को यदि छोड़ दिया जाय तो सारे भारतीय दर्शनों की आलोचना अधूरी रह जायगी यह अकाट्य सत्य है।"

उपर्युक्त सम्पूर्ण प्रमाणों तथा अजैन विद्वानों की गवेषणात्मक निष्पक्ष सम्मतियों से सिद्ध है कि जैनधर्म दुनियां के सम्पूर्ण धर्मों से स्वतन्त्र, समीचीन एवं प्राचीन होने का पूरा पूरा दावा रखता है। जैन शास्त्रानुसार यह धर्म परंपरा रूप में अनादि अनंत है और इस युग की दृष्टि से देखा जाय तो वह कर्मभूमि के प्रारंभ में भगवान् ऋषभदेव के द्वारा आज से असंख्यात् वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ था। भगवान् ऋषभदेव इस युग में जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर (धर्म प्रवर्तक या गुरु) थे। इनके हजारों लाखों वर्षों के बाद दूसरे और इसी प्रकार तीसरे चौथे आदि चौबीस तक तीर्थंकर होते रहे व स्वपर कल्याण कर मुक्ति-लाभ करते रहे। २४वें अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर हुए जिनके द्वारा उपदिष्ट यह धर्म संसार में इस समय विद्यमान है।

इति

जैनं जयतु शासनम्

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हमारी पुस्तकें

सचित्र वीर प्रतिभा—यह भगवान् महावीर स्वामी का राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में गर्भ से लेकर निर्वाण तक का पूर्ण जीवनचरित्र है जो कि नवीन ढङ्ग से ओजस्वी भाषा में लिखा गया है, और वीर जयन्ती पर तबला, हारमोनियम पर सुनाने व बांटने योग्य है। मूल्य ≈)॥ व पोस्टेज)॥

सचित्र रक्षाबन्धन कथा—राधेश्याम रामायण की तर्ज़ में लेखक की यह वही प्रसिद्ध पुस्तक है जिसे आचार्य शान्तिसागर महाराज तक ने कई बार चाव के साथ सुना और सराहा है। वात्सल्य अङ्ग के पालन की समुचित शिक्षा इसी से मिलती है। मूल्य ≈) व पोस्टेज)॥

जैन-धर्म— प्रस्तुत पुस्तक, न्यौछावर ।≈) पोस्टेज —) वितरण करने के लिये सब प्रतियां लेने वालों को बहुत किफ़ायत से दे देंगे, पत्र व्यवहार कीजिये।

नोटः—जो सज्जन सब पुस्तकें या सिर्फ़ "जैनधर्म" मँगावेंगे उन्हें भक्तामर काव्य, नवीन पद्यानुवाद व अर्थ और मूल श्लोक सहित उपहार में भेजा जायेगा। पुस्तकों का मूल्य व पोस्टेज ख़र्च मनिआर्डर से ही आना चाहिये, वी० पी० नहीं की जायेगी। मनि-आर्डर आने पर बुकपोस्ट से पुस्तकें तुरन्त ही रवाना कर दी जायेंगी, पुस्तक विक्रेताओं को उचित कमीशन भी मिलेगा। हर प्रकार के पत्र व्यवहार का पता—

नाथूराम डोंगरीय जैन,

जैन-शिक्षा-मन्दिर बिजनौर, (यू० पी०)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रिय महोदय !

आपने इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ा है, आशा है आपको यह पसन्द आई होगी और आपने ऐसी पुस्तकों द्वारा प्रत्येक जैन व अजैन बन्धुओं तक जैनधर्म के पवित्र संदेश को आज के बर्बरता पूर्ण युग में पहुंचाने की आवश्यकता अनुभव की होगी। अब इस पुस्तक का दूसरा संस्करण "एक लाख" की विशाल संख्या में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया है। यह संस्करण केवल बिना मूल्य वितरण करने के लिये होगा। इसलिये कृपया आप अपनी या अपनी संस्थाओं की ओर से अधिक से अधिक जितनी भी प्रतियां लेकर वितरण करना चाहें २५ जनवरी सन १९४१ तक उनकी स्वीकारता निम्न पते पर अवश्य भिजवा दें; अन्यथा वीर जयंती के शुभ अवसर आपको वितरण करने की सुविधा न मिल सकेगी। पुस्तकों का कुल व्यय निम्न प्रकार होगा—

१००००० का	१०००० का	१००० का	१०० का
१०००१) रु०	१००१) रु०	१२५) रु०	१५) रु०

क्या ही अच्छा हो यदि कोई एक ही उदार सज्जन अपनी ओर से एक लाख प्रतियां छपवा कर वितरण करा दें ! याद रखिये, धर्म प्रभावना का इससे अच्छा अन्य कोई कार्य नहीं हो सकता !

नाथूराम डोंगरीय जैन,
जैन शिक्षा-मन्दिर बिजनौर, (यू० पी०)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com